साहित्य

...दत्त व्यास

भारतीय
साहित्य के
निर्माता





घोषणा-पत्र

१. पुस्तक का विषय - संस्कृत के महाकवि अम्बिकादत्त व्यास का जीवन और कृतित्व

२. लेखक का नाम और पता - डॉ० ओम्प्रकाश पाण्डेय, रीडर, संस्कृत-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

३. संस्था, जिसमें लेखक कार्यरत है - लखनऊ विश्वविद्यालय।

४. लेखक का प्रमाण-पत्र

(क) मैं प्रमाणित करता हूँ कि मेरी उपर्युक्त रचना मौलिक है और यह प्रथम बार १९८३ में प्रकाशित हुई है।

(ख) यह रचना शोधग्रन्थ नहीं है।

(ग) मैं जन्म से उत्तर प्रदेश का निवासी हूँ तथा निरन्तर उत्तर प्रदेश में रह रहा हूँ।

— ओम्प्रकाश पाण्डेय

दि० २-२-८४

अम्बिकादत्त व्यास

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रालिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

अम्बिकादत्त व्यास

लेखक

ओम्प्रकाश पाण्डेय

साहित्य अकादेमी

Ambikadutt Vyas : Monograph in Hindi on Sanskrit and Hindi writer by Omprakash Pandey. Sahitya Akademi, New Delhi (1993) Rs. 15.

प्रथम संस्करण 1993

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति' मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700053

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट,

ए डी ए रंगमन्दिर, 109, जे. सी. मार्ग,
बंगलौर 560 002.

मूल्य
पन्द्रह रुपये

ISBN 81 7201 502 X
मुद्रक
अल्फ़ा कम्प्यूटर सिसटम्स एण्ड सर्विसेज़
4612, चर्खेवालान, चावड़ी बाज़ार दिल्ली - 110 006

अनुक्रम

परिवेश एवं पृष्ठभूमि

साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी बहुआयामी प्रतिभा से जिस युग में संस्कृत और हिन्दी के वाङ्मय को अभिषिक्त किया, वह उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध था।

राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टियों से व्यास जी का कार्य-काल बहुत ही उथल-पुथल भरा दिखलाई देता है। उनका आविर्भाव सन् 1858 ई. में हुआ। इससे कुछ मास पूर्व ही स्वाधीनता का प्रथम संघर्ष हो चुका था। विभिन्न कारणों से यद्यपि यह पूर्ण सफलता नहीं पा सका था, तथापि भारतीय जनमानस में अपूर्व आत्मविश्वास, संगठन-सामर्थ्य और आत्मविश्लेषण की भावना का संचार तो कर ही गया था। सैनिक-बल से, सत्ता को पुनः हस्तगत कर लेने पर भी, अंग्रेज़ शासक भीतर से हिल चुके थे और शासन-प्रणाली में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में पुनरुत्थान के सक्रिय प्रयत्न परिलक्षित हो रहे थे। ईसाई धर्म-प्रचारकों के द्वारा हिन्दुओं को धर्मान्तरित होते देखकर प्रबुद्ध वर्ग हिन्दू धर्म और समाज की आन्तरिक दुर्बलताओं तथा विसंगतियों के निराकरण-हेतु तीव्रता से तत्पर था। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसॉफिकल सोसाइटी के रूप में उभरे आन्दोलनों के माध्यम से जागरूक मनीषी– धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त विविध रूढ़ियों, कुरीतियों और अन्धविश्वासों पर प्रहार करते हुए, उन्हें दूर करने के प्रयत्न कर रहे थे। बंगाल इस दिशा में सबसे आगे था। सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म में आधुनिक दृष्टि से अपेक्षित अनेक सुधारों की चर्चा की। सन् 1828 ई. में, कलकत्ते में ब्रह्मसमाज की स्थापना कर उन्होंने वेदों और उपनिषदों में प्रतिपादित एकेश्वरवाद का समर्थन किया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मसमाज के नियम स्थिर किये और केशवचन्द्र सेन के नेतृत्त्व में यह ईसाइयत से प्रभावित हुआ। इसी मध्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य-समाज के माध्यम से हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने वेदों का आधार ग्रहण करते हुए समाज में व्याप्त जड़ता, अस्पृश्यता और बाल-विवाह इत्यादि का विरोध करते हुए स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह प्रभृति का समर्थन किया। सती-प्रथा का विरोध तो राजा राममोहन राय कर ही चुके थे, लार्ड विलियम बैंटिंक ने इसे दण्डनीय और अवैधानिक भी घोषित कर दिया था–

किन्तु इसके पूर्णतया व्यावहारिक उन्मूलन का श्रेय आर्य-समाज को है। वर्ण-व्यवस्था के जन्मगत आधार को चुनौती देते हुए आर्य-समाज ने गुण और कर्म की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा भी की।

कलकत्ते के दक्षिणेश्वर में, श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसे निःस्पृह महापुरुष ने अपने शिष्यों को जिस सर्वधर्मसमभाव की शिक्षा दी थी, वह विगत सौ वर्षों की अवधि में, आध्यात्मिक जगत् की सम्भवतः सबसे बड़ी उपलब्धि है। उनके श्रेष्ठ शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अपने अनुपम चरित्र, अतुलनीय और ओजस्वी वाग्मिता के बल पर देश-देशान्तर में हिन्दू-चिन्तन, आचार और आदर्शों की जो विजय-पताका फहराई, उससे जागृति की प्रचण्ड लहर उमड़ी। युवकों में आत्मविश्लेषण और आत्म-गौरव की प्रवृत्तियों का संचार हुआ। हीनता की ग्रन्थि समाप्त हुई और सम्पूर्ण भारतवर्ष अपने विगत वैभव से प्रेरणा लेकर पुनरुत्थान की दिशा में तेज़ी से अग्रसर हुआ।

साहित्यिक दृष्टि से भी 19वीं शती का उत्तरार्द्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शासकीय स्तर से अंग्रेज़ी के अध्ययन को जहाँ प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा था, वहीं पश्चिमी साहित्य के आलोक में भारतीय साहित्य में भी नई विधाएँ स्थान बनाने लगी थीं। संस्कृत भाषा और साहित्य में युगान्तर की आहट स्पष्टतया प्रतिध्वनित हो रही थी। संस्कृत के व्याकरण को सरल, सुबोध बनाते हुए, उसके साहित्य में नवीन आचार-विचारों और मूल्यों के समावेश का प्रयत्न समर्थ मनीषी कर रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्त्व में हिन्दी भी, रीतिकालिक परम्परा से हटकर, जन-जीवन की संवेदना को आत्मसात् कर रही थी। गद्य में शनैः शनैः खड़ी बोली प्रतिष्ठित हो रही थी और निबन्ध, इतिहास, पुरातत्त्व और समीक्षा की नयी दिशाएँ समृद्धि की दिशा में अग्रसर थीं। बाङ्ला के प्रभाव से उपन्यास-लेखन प्रारम्भ हो चुका था। हिन्दू-जागरण को प्रोत्साहित करनेवाले उपन्यास समाज में विशेष लोकप्रियता पा रहे थे। हिन्दी और संस्कृत के लेखकों की प्रेरणा-स्रोत थीं **महाराष्ट्र जीवन प्रभात** (रमेशचन्द्र दत्त–कृत बाङ्ला उपन्यास) और **राजसिंह** जैसी कृतियाँ। राजसिंह का बाङ्ला से अनुवाद स्वयं भारतेन्दु जी ने किया था। पं. अम्बिकादत्त व्यास भी इन कृतियों से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत हुए। काव्य-रचना की दृष्टि से अभी ब्रजभाषा ही यद्यपि अधिक उपयुक्त समझी जाती थी, लेकिन उसमें नवीन भावों का समावेश अधिकाधिक होता जाता था।

उस समय काशी प्रखर साहित्यिक गतिविधियों की केन्द्र थी। पं. गंगाधर शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री और बाल सरस्वती–सदृश सुरभारती के उद्भट साधक अपनी प्रतिभा से विदग्ध जनों का अनुरंजन और लोक-रुचि का परिमार्जन कर रहे थे। हिन्दी में भारतेन्दु और उनका सुहृद्वर्ग नवोन्मेष के लिए सचेष्ट था ही।

उपर्युक्त परिवेश में ही साँसें लेते हुए व्यास जी ने अपने जीवन-लक्ष्य को पहचाना था। भारतेन्दु-मण्डल के लेखकों में वे अग्रणी माने जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से, प्राचीन भारतीय चिन्तन को उत्कृष्ट मानते हुए, अपनी समसामयिक समस्याओं, देश की दुर्दशा और पराधीनता के प्रतिकार में जो वे प्रवृत्त हुए, उसमें उपर्युक्त परिवेश और पृष्ठभूमि ही प्रमुख रूप से प्रभावी प्रतीत होती है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संस्कृत-कवियों की कीर्ति-पराङ्मुखता बहुचर्चित है, किन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि व्यास जी ने अपने बिहारी-विहार शीर्षक ग्रन्थ में अपना परिचय दे दिया है। तदनुसार उनके पूर्वज जयपुर (राजस्थान) के निवासी थे। कालान्तर से पितामह पं. राजाराम काशी में आकर बस गये थे। व्यास जी के पिता पं. दुर्गादत्त अपने समय के बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् और कवि थे। उनकी ससुराल जयपुर में थी – वहीं उनके द्वितीय पुत्र के रूप में अम्बिकादत्त जी का जन्म चैत्र शुक्ला अष्टमी, सं० 1915 विक्रमी (सन् 1858 ई.) को हुआ। व्यास जी की शिक्षा-दीक्षा काशी में आकर हुई। उनके गुरुओं में पं. ताराचरण तर्करत्न, कुंजलाल वाजपेयी, कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य, राममिश्र और वामनाचार्य झलकीकर प्रमुख हैं। उन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, काशी की साहित्याचार्य उपाधि ससम्मान प्राप्त की। 'व्यास' उपाधि उन्हें उत्तम रीति से कथा कहने के कारण, स्वामी विशुद्धानन्द ने प्रदान की। स्वाध्याय से उन्होंने हिन्दी, अंग्रेज़ी और बाङ्ला का भी प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया था। संगीत और आयुर्वेद की भी उन्हें अच्छी जानकारी हो गयी थी।

किशोरावस्था मे ही व्यास जी हिन्दी और संस्कृत में काव्य-रचना और समस्या-पूर्तियाँ करने लगे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा संस्थापित 'कविता-वर्द्धिनी सभा' में भी उन्होंने अनेक बार समस्या-पूर्तियाँ कीं। उनकी 'मूँदि गईं आँखें, तब लाखैं कौन काम की' – इस समस्या की निम्नलिखित पूर्ति बहुत प्रसिद्ध है –

"चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु।
मोहन चहुँधा धूमधाम धन-धाम की।।
फूल फुलवारी फल फैली के फबे है।
तजि छवि छटकी ली यह नहिन अराम की।।
काया हाड़-चाम की लै राम की।
बिसारी सुधि, जाय की को जानै बात करत हराम की।।
अम्बादत्त भाषैं अभिलाषैं क्यों करत झूठ।
मूँदि गई आँखें तब लाखें कौन काम की।।'

बारह वर्ष की ही उम्र में वे संस्कृत में अच्छे श्लोकों की रचना करने लगे थे। एक बार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के भवन में और दाक्षिणात्य पण्डित तैलंग शतावधान की

उपस्थिति में, भारतेन्दु के अनुज गोकुलचन्द्र के आग्रह पर व्यास जी ने 'सरस्वती यन्त्र' बनाकर, सामने लगी घड़ी का वर्णन करते हुए निम्नलिखित दो श्लोकों की रचना की थी –

घटी सुवृत्ता सुगतिर्द्वादशाङ्क समन्विता।
उन्निद्रा सततं भाति वैष्णवीव विलक्षणा।।
घटी खटखटाशब्दव्याजेन कथयत्युत।
राम रट रट प्राज्ञ ! किमन्यैर्विफलैः फलैः।।

"घड़ी विशिष्ट लक्षणों वाली वैष्णवी की तरह है। घड़ी गोल-गोल है और वैष्णवी सदाचारशीला है। दोनों की चाल-ढ़ाल अच्छी है। घड़ी जहाँ बारह अंकों से युक्त है, वहीं वैष्णवी के मस्तक पर बारह के अंक के सदृश तिलक लगा हुआ है। दोनों ही उनींदी रहकर अपना-अपना कार्य करती रहती हैं। 'खट्-खट्' ध्वनि करती हुई घड़ी मानों यह कह रही है कि हे बुद्धिमान मनुष्य ! राम-राम रट, अन्य व्यर्थ के कार्यों का क्या प्रयोजन ?"

'सरस्वती यन्त्र' में बत्तीस कोष्ठक चार पंक्तियों में होते हैं। समस्या रखने वाला जिन-जिन कोष्ठों में संकेत करता जाता है, कवि उनमें अपनी रुचि से अक्षर लिखता जाता है।

उपर्युक्त रचना से प्रभावित होकर तैलंग पण्डित ने व्यास जी को 'सुकविरेषः' (यह श्रेष्ठ कवि हैं) कहकर सम्मानित किया। भारतेन्दु जी ने 'कवितावर्द्धिनी सभा' से भी 'सुकवि' उपाधि प्रदान की। इसके अतिरिक्त व्यास जी को अपनी साहित्यिक उपलब्धियों पर अनेक राजा-महाराजाओं तथा साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से भी 'घटिकाशतक' 'बिहार-भूषण' 'भारतरत्न' 'भारतभूषण', 'शतावधान', जैसी उपाधियाँ, बहुसंख्यक स्वर्णपदक और पारितोषिक भी समय-समय पर प्राप्त हुए थे।

सं. 1932 से व्यास जी ने काशी के **आर्यमित्र** नामक पत्र में विभिन्न विषयों पर लिखना प्रारम्भ कर दिया। **भारतजीवन** के सम्पादक बाबू रामकृष्ण, हिन्दी में जासूसी उपन्यासों के आद्य लेखकद्वय बाबू देवकीनन्दन खत्री तथा कार्तिक प्रसाद खत्री और अमीर सिंह प्रभृति साहित्यिक जन व्यास जी के घनिष्ठ मित्र थे।

अपने समय की विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओं के साथ वे सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। इनमें 'ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा', 'धर्मसभा'. 'सुनीति संचारिणी सभा' आदि के नाम प्रमुख हैं। 'बिहार संस्कृत-संजीवन-समाज' : स्थापना कर उसके माध्यम से उन्होंने संस्कृत-शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक सुधार किये थे। समकालीन सामाजिक उथल-पुथल से भी वे अप्रभावित नहीं रहे। अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहकर अनेक शास्त्रार्थों में भी उन्होंने भाग लिया। इसी क्रम में स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ भी उनका शास्त्रार्थ हुआ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में, व्यास जी ने वैष्णव पत्रिका तथा पीयूष प्रवाह संज्ञक पत्रों का, वर्षों तक कुशलतापूर्वक सम्पादन किया। भागलपुर, मधुबनी (दरभंगा) और मुजफ्फरपुर के संस्कृत विद्यालयों में वे प्राचार्य तथा गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, पटना में प्राध्यापक रहे। धर्म-प्रचार के लिए उन्होंने कलकत्ता से पंजाब तक की यात्राएँ कीं। व्यास जी तत्कालीन मंच के कुशल और प्रभावशाली वक्ता थे। हिन्दी में आशुलेखन प्रणाली (शार्ट हैंड) के विकास के लिए भी उन्होंने बहुत कार्य किया था, जिसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की कार्यवाही-पंजिकाओं में है।

इस प्रकार, व्यास जी का व्यक्तित्त्व बहुमुखी था। वे यशस्वी उपन्यासकार, समर्थ कवि, कुशल नाटककार, सम्पादक एवं पत्रकार, देशभक्त, ओजस्वी वक्ता, उद्भट धर्मप्रचारक, परम भगवद्भक्त और संस्कृत के प्रसार में संलग्न प्रौढ़ मनीषी के रूप में, साहित्य के इतिहास में सादर स्मरण किये जाते हैं। व्यास जी की कृतियों की प्रत्येक पंक्ति उनकी बहुज्ञता की साक्षी है।

मार्गशीर्ष कृष्ण 13, सं. 1957 विक्रमी (19 नवम्बर 1900) को, 41 वर्ष की अवस्था में व्यास जी ने उदर रोग से पीड़ित अवस्था में यद्यपि भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया, किन्तु अपने अल्पायु जीवन में भी उन्होंने जिस विशाल साहित्य की सृष्टि की, वह उनके यशःकाय को अक्षुण्ण रखने में पूर्ण समर्थ है।

रचनाएँ

यदि अपूर्ण कृतियों को छोड़ दिया जाये, तो संस्कृत और हिन्दी में, छोटी-बड़ी सभी रचनाओं को मिलाकर, व्यास जी ने प्रायः अस्सी ग्रन्थों की रचना की।

उपलब्ध संस्कृत-रचनाएँ इस प्रकार हैं – (1) कथा कुसुम (2) अवतारकारिका (3) गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन (4) दुःखद्रुमकुठार (5) धर्माधर्मकलत्रम् (6) बाल व्याकरण (7) प्राकृतविचित्रशब्दार्थकोश (8) मित्रालाप (9) सहस्रनाम रामायण (10) सामवतम् (नाटक) (11) शिवराजविजय (गद्य-काव्य) (12) सांख्य सागर सुधा (13) संस्कृत-अभ्यास-पुस्तक (14) पातञ्जल प्रतिविम्ब।

अनुपलब्ध और अपूर्ण ग्रन्थ हैं – अनुष्टुब्लक्षणोद्धार, आर्यभाषासूत्राधार, गणेशशतक, पाकृतप्रवेशिका इतिहाससंक्षेप, कुण्डलीदर्पण, छन्द : प्रबन्ध, द्रव्यस्तोत्र, रत्नाष्टक।

व्यास जी की हिन्दी में जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनका विवरण इस प्रकार है –

(1)	अवोध निवारण	(2)	आश्चर्यवृत्तान्त
(3)	ईश्वरेच्छा	(4)	कथाकुसुमकलिका
(5)	गद्यकाव्यमीमांसा भाषा	(6)	कलियुग और घी

(7) क्षेत्रकौशल
(8) गोसंकट नाटक
(9) चतुरंग चातुरी
(10) जटिल वणिक्
(11) तासकौतुकपचीसी
(12) देवपुरुषदृश्य
(13) धर्म की धूम
(14) निजवृत्तान्त
(15) पावसपचासा
(16) तर्क संग्रह-भाषाटीका
(17) धर्मपर्व
(18) पुष्पवर्षा
(19) विहारी-विहार
(20) भारतधर्म
(21) महातासकौतुकपचासा
(22) रसीली कजरी
(23) संस्कृत-संजीवन
(24) सांख्यतरंगिणी
(25) सुकविसतसई
(26) भारतसौभाग्य
(27) मूर्ति-पूजा
(28) विभक्तिविलास
(29) ललिता (नाटिका)
(30) संस्कृतसन्ताप
(31) साहित्य नवनीत
(32) स्वर्गसभा
(33) हो हो होरी।

संस्कृत-कृतियों में सामवतम् और शिवराजविजय विशेष प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में बिहारी-विहार की चर्चा अधिक हुई है। इनमें सामवतम् यौन-परिवर्तन की पृष्ठभूमि पर आधृत नाटक है। विहारी-विहार रीतिकाल के प्रसिद्ध हिन्दी कवि बिहारी के जीवन और काव्य पर गवेषणापूर्ण आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं।

शिवराजविजय औपन्यासिक स्वरूप में रचित गद्यकाव्य है। इसका प्रणयन व्यास जी ने सं. 1945 वि. में आरम्भ किया था, जो सं. 1950 वि. अर्थात् पाँच वर्षों की अवधि में पूर्ण हुआ। व्यास जी के पौत्र श्रीकृष्णकुमार व्यास के द्वारा संरक्षित एक पाण्डुलिपि से ज्ञात होता है कि पहले व्यास जी ने इसका नामकरण 'शिवविजय' किया था। आगे यह 'शिवराजविजय' के रूप में परिवर्तित हो गया। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं। इस प्रकार कुल बारह निश्वास इस कृति में हैं जिनमें छत्रपति शिवाजी के जीवन की प्रमुख घटनाएँ उपन्यास में विन्यस्त हैं।

शिवराजविजय

शिवराजविजय की विधा का निर्णय एक कठिन समस्या है, क्योंकि संस्कृत में 'कवि' और 'काव्य' शब्द बड़े व्यापक हैं। शब्द के माध्यम से सृष्टि करने वाला प्रत्येक स्रष्टा कवि है – चाहे उसने पद्य, गद्य, नाटक, कथा या उपन्यास में से किसी की भी रचना की हो। स्थूल रूप से उपर्युक्त सभी को 'काव्य' कहा गया है।

शिवराजविजय की विधा के विषय में प्रमुख अवधारणाएँ ये हो सकती हैं– (1) यह एक आख्यायिका है ; (2) आधुनिक शैली में प्रणीत उपन्यास है ; (3) गद्य-काव्य है।

अग्निपुराण[1], रुद्रट-कृत काव्यालंकार[2], दण्डी के काव्यादर्श[3], अमरकोश[4], तथा महापात्र विश्वनाथ के साहित्यदर्पण[5], में दिए गए लक्षणों के अनुसार शिवराजविजय को ऐतिहासिक कथा होने के कारण 'आख्यायिका' कहा जा सकता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि इस पर 'कथा' (–कुछ बातें छोड़कर–) और 'आख्यायिका' दोनों के ही लक्षण सटीक बैठ जाते हैं। इतिहास गृहीत होने पर भी यह शिल्प में हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी के अधिक निकट है। शिवराजविजय के लेखक के साथ यह अन्याय होगा यदि हम अन्तः साक्ष्यों पर दृष्टि डालें बिना ही उसे 'कथा' अथवा 'आख्यायिका' के बने-बनाये साँचे में रख दें। वस्तुतः इसके लेखन-काल में, स्रष्टा के चेतन-अवचेतन मानस में 'कथा' या 'आख्यायिका' का शिल्प-विधान नहीं रहा है, इसके विपरीत वह पश्चिम के औपन्यासिक गद्यरूप के प्रति ही अधिक आकृष्ट लगता है। पाश्चात्य विधा 'नावेल' के अनुसरण पर भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम गुजराती और बाङ्ला भाषाओं में उपन्यासों की रचना हुई। गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों की तकनीक से लेखक परिचित है, जैसा कि उसने 'निर्माणहेतुः' में संकेत दिया है– "साम्प्रतन्तु समय-महिम्ना भारतीय-भाषासु बहुधा गद्यकाव्यानि विरच्यन्ते। वङ्ग-गुर्जरादिभाषासूपन्यासैरेव व्याप्ता विपणयः। हिन्दी भाषापि प्रत्यहमतिशयमासादयति

1. अग्निपुराण 337.15-17
2. काव्यालंकार 1.25-29
3. काव्यादर्श 1.23-28
4. अमरकोश 1.6-5
5. साहित्यदर्पण 6.332-334

गद्य सोपानेष्वेव [illegible]।" आगे उसने "नवान् नव्यान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुम्" का उल्लेख भी किया है। अतएव बँधे-बँधाये चौखटे में **शिवराजविजय** को ठोंक-पीटकर जड़ने पर हम भी उसी अपराध के दोषी होंगे जिसकी चेतावनी लेखक ने "... न संस्कृतज्ञा एव प्रायशः पारयन्ति" कहकर दी है। वास्तविकता यह है कि **शिवराजविजय** का रचनाकार दण्डी, सुबन्धु और बाण तथा आधुनिक पाश्चात्य औपन्यासिक शिल्प सभी से प्रभावित है; प्रमाणस्वरूप "निर्माणहेतुः" का ही एक अंश पुनः उद्धृत है – "अस्माकं महामान्या धन्याः सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयः ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारतवर्षं सबहु-प्रमोद-वर्षं व्यधिषत; येषां चोक्ति पर्यालोचन-प्राप्त-पर्याप्त-व्युत्पत्त्ययोऽ सङ्ख्याश्छात्रा अद्यापि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च चिराय।"

यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि **शिवराजविजय** की रूपवत्ता का आधुनिक उपन्यासों से बहुत कुछ साम्य होने पर भी, उसके लेखक ने पूर्णतया पाश्चात्य उपन्यासकला को नहीं अपनाया है। वस्तु-संघटना की दृष्टि से जहाँ लेखक आधुनिक मानकों के प्रति सतर्क है, वहीं वर्णन-विन्यास के लिए वह कादम्बरीकार की ओर देखता है। किन्तु **कादम्बरी** और **शिवराजविजय** में एक अन्तर है। **कादम्बरी** के लम्बे-लम्बे वर्णन कभी-कभी खटकते हैं, जबकि **शिवराजविजय** के वर्णन औचित्यपूर्ण तथा वातावरण के निर्माण की दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होते हैं। **कादम्बरी** में आद्यन्त एक ही शैली है, कथा-प्रवाह में संश्लिष्टता नहीं है, जबकि **शिवराजविजय** का लेखक निरन्तर रोचकता बनाये रखता है; वर्णनों को वह बाधक नहीं बनने देता।

शिवराजविजय : एक ललित उपन्यास : अतः यह न तो आख्यान या आख्यायिका है और न ही पूरी तरह आधुनिक उपन्यास। इसे यदि कोई नाम देना ही है तो 'ललित (ऐतिहासिक) उपन्यास' कहा जा सकता है। लालित्यपूर्ण पदावली का विन्यास और कथा-उपन्यास में भी महाकाव्योचित गरिमा का निर्वाह संस्कृत-लेखक की स्वभावगत विशेषताएँ हैं, जिनसे वह सरलता से मुक्त नहीं हो पाता। यही वह बिन्दु है जो इसे आधुनिक उपन्यासों से भिन्न करता है। इसलिए यहाँ उपन्यास से पूर्व 'ललित' पद विशेषण के रूप में जोड़ना पड़ा है।

साथ ही, यह भी स्मरणीय है कि इसके लेखक ने इसे गद्य-काव्य ही कहा है: "महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यत् मण्डूक इव महापारावार-पारमासादयितुं यतमानस्तादृशं कवि-कौशल-निकषायितं गद्यकाव्यं मादृक्षः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति।"

इससे स्पष्ट है कि कथा-प्रवाह की रोचकता बनाए रखने पर भी **शिवराजविजय** का रचनाकार काव्यात्मक सौन्दर्य के प्रति सतर्क और सचेष्ट है। अतः उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपन्यास से पहले 'ललित' पद का योग आवश्यक है।

किसी समीक्षक का यह कथन ठीक ही है कि "संस्कृत वाङ्मय का यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी भाषा-शैली **कादम्बरी** आदि के तुल्य है। इसमें वाक्य-विन्यास, अलंकारों और रसों का समन्वय प्राचीन परम्परा के अनुसार है, परन्तु इसका रूप-विधान पाश्चात्य प्रणाली से लिखे जाने वाले उपन्यासों के तुल्य है। इस पर बंगीय उपन्यासों का भी पर्याप्त प्रभाव है। अतः यह प्राचीन और नवीन काव्य की शृंखला, प्राच्य और पाश्चात्य शैली का समन्वय तथा काव्य और इतिहास का सम्मिश्रणात्मक प्रगतिवादी उपन्यास है।

यह स्वीकार कर लेने पर भी कि **शिवराजविजय** की रचना आधुनिक उपन्यास के सदृश है, उसे पश्चिम से पूर्णतया प्रभावित नहीं माना जा सकता। सम्भव है, भारतीय भाषाओं के कुछ आद्य उपन्यासकारों ने अंग्रेज़ी उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण की हो, किन्तु **शिवराजविजय** के लेखक को पाश्चात्य उपन्यासों का प्रभाव सीधे नहीं मिला। उसके सम्मुख **कादम्बरी** और **दशकुमारचरित** के अतिरिक्त बाङ्ला और गुजराती के उपन्यास ही थे। अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यासकारों के सम्मुख भी मुख्य आदर्श **कादम्बरी** ही रही है; मराठी में तो इसी कारण उपन्यास-विधा को ही 'कादम्बरी' कहते हैं। बाङ्ला उपन्यासों के विषय में भी यही बात है। **वंगसाहित्ये उपन्यासेर धारा** में श्री श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय का कथन है कि ऐसी बात नहीं थी कि बाङ्ला में उपन्यास एकबारगी ही कहीं से आ गया हो; प्राचीन संस्कृत-साहित्य में इसके सङ्केत अवश्य पाये जाते हैं। **शिवराजविजय** का जहाँ तक प्रश्न है, इसका लेखक उपन्यास को गद्य-काव्य का पर्यायवाची ही मानता है, जैसा कि उसकी अपनी उक्ति है –

गद्यैर्विद्योतितं यत् स्याद् गद्यकाव्यं तदीरितम्।
ग्रन्थरूपं तदेवात्र श्रव्यं किञ्चिन्निरूप्यते।।
उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते।
यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजविजयो मम।।

जहाँ तक **शिवराजविजय** में आधुनिक औपन्यासिक तत्त्वों के समावेश की बात है, इनका विवेचन संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में रूपकों के प्रसंग में पहले ही हो चुका है। कथावस्तु पर पञ्चसन्धियों, कार्यावस्थाओं और इनके भेद-प्रभेदों पर नाट्यालोचनपरक ग्रन्थों में विपुल विचार हुआ है। यही स्थिति अन्य तत्त्वों के विषय में भी है। फिर यह तो समर्थ साहित्यस्रष्टा की सहज समुपलब्धि है।

शिवराजविजय : एक ऐतिहासिक उपन्यास

व्यास जी आधुनिक संस्कृत-साहित्य के उन्नायकों में अग्रणी हैं। उन्हें संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है। उनका गद्य-काव्य **शिवराजविजय** पाश्चात्य औपन्यासिक शिल्प, आधुनिक भावबोध और प्राच्य काव्य-सौन्दर्य के सम्मिश्रण का प्रतिनिधि है। इसके आविर्भाव से संस्कृत-साहित्य में नये युग के पदार्पण का विश्वास जगा। इसकी भाव-सम्पत्ति, रस-निष्पत्ति और कौतूहल भरे रोमांचक वातावरण की सृष्टि ने भारतरत्न स्व. डॉ. भगवानदास और म. म. गोपीनाथ कविराज जैसे विख्यात मनीषियों को भी अभिभूत कर दिया। उन्होंने इसकी ललित और सुबोध शैली की उन्मुक्त रूप से प्रशंसा की है।[1] साहित्य की अग्रगामी धारा में, स्थान-निर्धारण-हेतु कृति की विशद विवेचना यहाँ अपेक्षित है।

ऐतिहासिक-कथानक

शिवराजविजय की कथावस्तु भारतीय इतिहास के मध्य-युग से सम्बद्ध है। यह काल संक्रमण के वात्याचक्र से इतना आन्दोलित रहा है कि इसे सरलता से 'संघर्ष-काल' की संज्ञा दी जा सकती है। औरंगज़ेब के बर्बर, धर्मान्ध और अत्याचारपूर्ण शासन से टक्कर लेने वाले महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी जागरूक भारतीय जन-मानस के लिए सतत प्रेरणाप्रद आदर्श नायक रहे हैं। वही शिवाजी इस कृति के भी नायक हैं। अंग्रेज़ों की दासता से विषण्ण किन्तु कदर्यताग्रस्त जन-मन

---

1. It is a well known historical romance in Sanskrit prose, based on the story of the Maharastra chief Shivaji and written in a graceful and lucid style. The present work shows him as a gifted Sanskrit writer. In the history of Sanskrit prose literature, this work, though recent production, deserves a lasting place.

—Kaviraj, M.M. Pt. Gopi Nath.

शिवराजविजय की भाषा उत्तमोत्तम भी, सुबोध भी, यथास्थान, यथावसर उद्दाम भी, कोमल भी। नवों रस भी इसमें बहुत औचिती और दक्षता से रखे हैं। वीररस, जिसका अर्वाचीन संस्कृत सहित्य में अभाव ही है, वह इस ग्रन्थ में प्रधान है। राजनीति, चार-चातुर्य और रण-कौशल का भी निरूपण बहुत सुंदर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय ऐतिहासिक, देशभक्ति, जन्मभूमि-भक्ति और भारतीय राष्ट्रीय भाव से भरा है। —डॉ. भगवानदास.।

(— **शिवराजविजय** के विभिन्न संस्करणों में प्रकाशित भूमिका से)

को, पराधीनता के पाश को उतार फ़ेंकने के लिए प्रेरित करने के निमित्त इससे अच्छा संघर्षशील प्रतीक संभवतः दूसरा नहीं चुना जा सकता था। शिवाजी की अधिकांश जीवन-घटनाएँ प्रायः इतिहास-सम्मत हैं। उन्हीं को मूल आधार बनाकर लेखक ने उपन्यास का ताना-बाना बुना है। इतिहास की छिन्न कड़ियों और विलुप्त तथ्यों को एकसूत्र में निबद्ध करने के लिए कहीं-कहीं उसे कल्पना से काम लेना पड़ा है। सुख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा के अनुसार "जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके, उपन्यास-लेखक भूली या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है।" – इस कथन की शिवराजविजय में प्रतीति की जा सकती है।

इसमें छत्रपति शिवाजी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष, संगठन, विजय, पराजय और पुनः विजयाभियानों की रोमांचक गाथा है। 10 अप्रैल 1627 – (जिस दिन शिवाजी का जन्म हुआ) से 4 अप्रैल 1680 (शिवाजी के तिरोभाव) तक छत्रपति के जीवन में इतनी तेज़ी से विविध घटनाएँ घटती हुई दिखती हैं कि उस समस्त वृत्त की प्रस्तुति किसी भी लेखक के लिए अत्यधिक आयासकारक और प्रायः असंभव-सी है। इसीलिए शिवराजविजय के सन्दर्भ में व्यास जी ने कुछ प्रमुख घटनाओं को ही चुना है, जिनका विवरण यों है – मुस्लिम शासकों के अत्याचारों के विरोध में शिवाजी का संघर्ष छेड़ना, शिवाजी की सतत सफलता से बीजापुर के सुल्तान का चिन्तित होकर जीवित या मृतरूप में शिवाजी को पकड़ने के लिए अफ़जलख़ाँ को भेजना, शिवाजी के द्वारा अफ़जलख़ाँ का वध, शाइस्ता ख़ाँ का पराजित होकर पलायन करना, कवि भूषण की शिवाजी से भेंट, 1664 ई. में शिवाजी के द्वारा सूरत-विजय, जयसिंह से सन्धिवार्ता और जयसिंह की प्रेरणा से शिवाजी का औरंगज़ेब के दरबार में जाना, वन्दी-जीवन और महाभिनिष्क्रमण।

संक्षिप्त कथावस्तु

उपन्यास का आरम्भ सूर्योदय-वर्णन से है। प्रथम चित्र एक आश्रम में स्थित दो ब्रह्मचारि-बालकों के द्वारा किसी यवन से अपहृत कन्या के मोचन का है। प्रत्येक दो कोस पर ये आश्रम शिवाजी के सहायकों के द्वारा शत्रुओं की गतिविधियाँ जानने के लिए बने थे। शिवाजी की सतत विजयोपलब्धियों से खिन्न बीजापुर-सुल्तान ने उन्हें पकड़ने के लिए अफ़जल ख़ाँ को भेजा। उसने भीमा नदी के किनारे शिविर लगा दिया। शिवाजी उस समय प्रताप दुर्ग में थें। उन्हें अपने विरुद्ध षड्यन्त्र का पता सुल्तान के ही एक गुप्तचर से प्राप्त पत्र से लग गया। इस गुप्तचर ने मार्ग में एक ब्राह्मण-कन्या का अपहरण किया किन्तु उसे उपर्युक्त आश्रम के ब्रह्मचारि-गुरु के शिष्यद्वय–गौरसिंह और श्याम सिंह ने छुड़ा लिया। गुप्तचर के मारे जाने पर उसके वस्त्रों से ही उक्त पत्र गौरसिंह को प्राप्त हुआ था। शिवाजी ने पं. गोपीनाथ के द्वारा

प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफ़ज़ल ख़ाँ से मिलने की व्यवस्था की। गौरसिंह भी तानरंग नामक गायक बनकर, अफ़ज़ल ख़ाँ से मिला और षड्यन्त्र की जानकारी ले आया। शिवाजी ने तदनुरूप मिलन-स्थल के चतुर्दिक् सैन्य-व्यवस्था गुप्तरूप से कर दी। सवेरे अफ़ज़ल ख़ाँ से मिलने जाते समय शिवाजी वस्त्रों से आच्छन्न कवच और सिंहनख नामक शस्त्र पहनकर गये। परस्पर आश्लेष करते समय, अफ़ज़ल ख़ाँ के प्रहार से पहले ही, शिवाजी ने सिंहनख से उसे मार डाला। उनकी सेना ने शत्रु-सैन्य को पलायन करने के लिए विवश कर दिया।

गौरसिंह के द्वारा संरक्षित कन्या के संरक्षक वृद्ध ब्राह्मण ने रहस्योद्घाटन किया कि वह गौरसिंह और श्याम सिंह की बहन सौवर्णी है तथा वे स्वयं उनके पुरोहित देवशर्मा हैं। ब्रह्मचारि-गुरु की आज्ञा से गौरसिंह ने भी अपना परिचय देते हुए कहा कि वह उदयपुर के जागीरदार खड्गसिंह का पुत्र है। माता-पिता के निधन के अनन्तर तीनों भाई-बहिन पुरोहित के संरक्षण में रहते थे। कदाचित् शिकार खेलने गये दोनों भाइयों को लुटेरों ने पकड़ लिया। युक्ति-कौशल से वे अश्वारूढ़ होकर भाग निकले और एक हनुमान-मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र गये – वहाँ शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ता ख़ाँ के द्वारा पूना पर अधिकार करने पर शिवाजी के लिए उससे संघर्ष करना स्वाभाविक हो गया। सिंहदुर्गस्थ शिवाजी के सन्देश को तोरण दुर्गाध्यक्ष के पास पहुँचाने के लिए रघुवीरसिंह भी उसी मारुति-मन्दिर में ठहरा। वहाँ सौवर्णी को देखकर उसके प्रति रघुवीरसिंह के मन में अनुराग की भावना जगी।

प्रच्छन्न वेष में शिवाजी की भेंट कवि भूषण से हुई। अगले दिन राजसभा में उनकी कविता सुनकर शिवाजी ने उन्हें पुरस्कृत किया। महादेव पण्डित के रूप में शिवाजी ने एक दिन शाइस्ता ख़ाँ से भी भेंट की। उस समय उनके बाल्य मित्र माल्यश्रीक भी साथ थे। इसके अनन्तर वे यशवन्त सिंह से भी मिले। शाइस्ता ख़ाँ पर आक्रमण के समय, शिवाजी ने उनसे कुछ दूरी पर रहने के लिए कहा।

इसी मध्य रघुवीरसिंह और सौवर्णी परस्पर अनेक बार मिले। सौवर्णी के विवाह के लिए चिन्तित देवशर्मा को गौरसिंह ने बताया कि उनके पिता ने आमेर राज-कुल के एक जागीरदार वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रामसिंह से सौवर्णी के विवाह का निश्चय किया था। रघुवीरसिंह से औरंगज़ेब की पुत्री रोशनआरा के निकट ही होने की सूचना पाकर गौरसिंह ने उसे पकड़ लिया और तोरणदुर्ग में रखकर शिवाजी को सूचना दी। इस शुभ शकुन से उत्साहित होकर, साथियों के सहित शिवाजी ने रात में वर-यात्रिकों के रूप में शाइस्ता ख़ाँ पर आक्रमण कर दिया। घायल होकर शाइस्ता ख़ाँ भाग निकला और शिवाजी सकुशल सिंहगढ़ पहुँच गये।

तोरण दुर्ग में शिवाजी को देखकर रोशनआरा के हृदय में उनके पराक्रम और सौन्दर्य के कारण अनुराग की भावना उत्पन्न हो गई। इसी बीच औरंगज़ेब का पुत्र

मुअज्जम शिवाजी से युद्ध करने के लिए आ गया, जिसे माल्यश्रीक ने बन्दी बना लिया। सेनापति वीरेन्द्र ने उन्हें सूरत-विजय का समाचार दिया।

आश्रम में ब्रह्मचारि-गुरू ने, गौरसिंह के अनुरोध पर अपना इतिवृत्त सुनाते हुए कहा – वे जयपुर के राजपरिवार के हैं और जयपुर के ही निकट जितवार ग्राम में रहते थे। खड्गसिंह उनके मित्र थे। किन्हीं मिथ्या कारणों से राजा जयसिंह के रुष्ट हो जाने पर वे अपने पुत्र और पुरोहित के साथ रामेश्वर की यात्रा के लिए चल पड़े। मार्ग में तूफान से जहाज़ ध्वस्त हो गया। वे किसी प्रकार बचकर महाराष्ट्र पहुँच गये। पुरोहित की पीठ पर बँधा उनका पुत्र न जाने कहाँ बहकर चला गया। राम-मन्दिर के पुजारी ने कहा है कि तुम उसे विवाह के अवसर पर देखोगे। शिवाजी ने गुरू जी की वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें आश्रम का अध्यक्ष बना दिया है। उनका वास्तविक नाम वीरेन्द्रसिंह है।

इसी बीच तोरणदुर्ग के रक्षक क्रूरसिंह ने सौवर्णी से अनेक बार छेड़-छाड़ करने का प्रयत्न किया। रोशनआरा द्वारा, भेंट के समय, अनुराग प्रकट करने पर शिवाजी ने उसे बतलाया कि उसके पिता औरंगज़ेब की अनुज्ञा मिलने पर ही वे उसे ग्रहण कर सकते हैं।

इसी अन्तराल में उन्हें राजा जयसिंह के ससैन्य आने की सूचना मिली। उनके साथ युद्ध करना व्यर्थ समझकर शिवाजी ने सन्धि कर ली। जयसिंह ने उन्हें मुग़लों की अधीनता स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया। सन्धि के फलस्वरूप रोशनआरा और मुअज्जम मुग़लों को प्रत्यर्पित कर दिये गये। सन्धि की दूसरी शर्त के अनुसार शिवाजी ने बीजापुर के एक किले रुद्र-मण्डल पर आक्रमण किया। रघुवीरसिंह की वीरता के कारण वे किले पर अधिकार करने और किलेदार रहमतख़ाँ को जीवित पकड़ने में सफल हुए जिसे बाद में छोड़ दिया गया। रहमतख़ाँ ने शिवाजी को सूचित किया कि आपकी सेना में एक विश्वासघाती राजद्रोही है। क्रूरसिंह के द्वारा रघुवीरसिंह पर यह आरोप लगाने पर, बिना जाँच किये ही, शिवाजी ने रघुवीरसिंह को निकाल दिया। अगले दिन जयसिंह के द्वारा छानबीन करने पर पता चला कि वास्तविक विश्वासघाती स्वयं क्रूरसिंह है। रघुवीर के पुरोहित गणेश शास्त्री ने जयसिंह से कहा कि रघुवीर तुम्हारे जागीरदार वीरेन्द्रसिंह का पुत्र रामसिंह है। वीरेन्द्रसिंह का समाचार पाकर जयसिंह ने उनसे खेद प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की।

अपमान से खिन्न रघुवीर ने राघवस्वामी बनकर शिवाजी के प्रति उपकार करते हुए अपने मिथ्या लांछन के निराकरण का निश्चय किया। इस क्रम में, सौवर्णी के अपहरण के लिए प्रयत्नशील क्रूरसिंह का वध करके वह शिवाजी की सहायता के लिए उद्यत हो गया।

जयसिंह की प्रेरणा तथा दिल्ली दरबार में सद्व्यवहार के आश्वासन से प्रोत्साहित होकर शिवाजी दिल्ली चल पड़े। मार्ग में राघवस्वामी के रूप में रघुवीरसिंह

ने अनेक बार उन्हें दिल्ली-गमन से विरत करने का प्रयत्न किया, किन्तु शिवाजी ने उसके परामर्श को स्वीकार नहीं किया।

दिल्ली पहुँचने पर जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने शिवाजी का स्वागत किया। वह उन्हें औरंगज़ेब के दरबार में ले गया। वहाँ बादशाह के द्वारा समुचित सम्मान न करने पर वे क्षुब्ध हुए, किन्तु शान्त रहे। बाद में उन्हें एक महल में ठहराकर बन्दी बना लिया गया। यहाँ भी राघवस्वामी ने उन्हें मुक्त कराने की योजना बनाई, किन्तु शिवाजी ने साथियों को संकट में छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। उनके शुभैषियों ने उन्हें मुक्त कराने के प्रयत्न किये, परन्तु वे सफल न हो सके। इसी मध्य रोशनआरा का प्रणय-सन्देश उन्हें मिला, किन्तु शिवाजी ने उसे समझा-बुझाकर टाल दिया।

इसके पश्चात् शिवाजी ने दिल्ली से निकल भागने के लिए बीमारी का बहाना बनाया। उनके मित्र और सेनापति मुरेश्वर, एक हकीम बनकर उनसे मिल गये। तदनन्तर स्वस्थ होने के उपलक्ष्य में मिष्ठान्न-वितरण प्रारम्भ करा दिया गया। मिठाइयों के टोकरे में बैठकर एक दिन शिवाजी स्वयं निकल गये। संन्यासी के रूप में गौरसिंह और माल्यश्रीक के साथ उन्होंने दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर दिया। मार्ग में यवन-सैनिकों के द्वारा बाधाएं उत्पन्न करने पर राघवस्वामी ने शिवाजी की प्राण-रक्षा की। यहीं उन्होंने जाना कि राघवस्वामी ही वास्तव में रघुवीर है जो उनकी निरन्तर सहायता करता रहा है। उन्होंने रघुवीर से खेद प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की।

शिवाजी के महाराष्ट्र पहुँचने पर रघुवीर की दोषरहितता, शौर्य और स्वामिभक्ति का वृत्त चतुर्दिक प्रसारित हो गया। सौवर्णी इससे विशेष प्रसन्न हुई। रघुवीर, सौवर्णी और देवशर्मा से मिलने के अनन्तर अपने पिता वीरेन्द्रसिंह और पुरोहित गणेश शर्मा से मिला – तदनन्तर राजमाता की सेवा में उपस्थित हो गया। जयपुर नगर से रामसिंह (रघुवीरसिंह) के लिए राजपद का अधिकार-पत्र लेकर इसी समय एक दूत आया।

महाराष्ट्र लौटने पर शिवाजी ने समारोहपूर्वक प्रतापदुर्ग में प्रवेश किया। अगले दिन गौरसिंह को मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया। रघुवीरसिंह को भी यह सम्मान प्राप्त हुआ। शिवाजी के सैनिकों ने मुग़लों को सन्धि में दिये सभी किले पुनः जीत लिये। सौवर्णी और रघुवीरसिंह का विवाह गौरसिंह के प्रासाद में सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने सतारा को राजधानी बना लिया। एक रात स्वप्न में उन्होंने औरंगज़ेब को उद्विग्न और पिता से प्रताड़ित रोशनआरा को आत्महत्या करते हुए देखा। शीघ्र ही पूरे महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया। बहुत बड़ी सेना लेकर दिल्ली से आये, औरंगज़ेब के सेनापति मोहब्बतखाँ को शिवाजी के सैनिकों ने युद्ध में परास्त कर भगा दिया। ग्रन्थ का समापन इन सूक्ति-वाक्यों से हुआ है –

"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।" – जहाँ धर्म है, वहीं कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं, वहीं विजय है। तथा –

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।" – हत्यारा दुष्ट अपने ही पापों से विनष्ट हो जाता है और समदृष्टि के प्रभाव से सज्जन स्वयं भय से मुक्त हो जाते हैं।

ऐतिहासिक कथानक में लेखक-कृत परिवर्तन और उनका औचित्य

शिवराजविजय के ऐतिहासिक कथानक में लेखक ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किये हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख परिवर्तन ये हैं–

1. गोपीनाथ पण्डित को बीजापुर के सुल्तान का सेवक बतलाया गया है, जबकि जदुनाथ सरकार के अनुसार वे शिवाजी के विश्वासपात्र व्यक्ति थे और बीजापुर का दूत कृष्णाजी भास्कर था।[1]

2. राजकुमार मुअज्जम को शिवाजी के द्वारा क़ैद किये जाने के प्रमाण इतिहास में उपलब्ध नहीं हैं।

3. रोशनआरा के द्वारा शिवाजी के प्रति प्रणय-प्रदर्शन के साक्ष्य भी इतिहास में नहीं हैं।

4. सूरतनगर की विजय के अभियान में शिवाजी स्वयं सम्मिलित थे, जबकि **शिवराजविजय** में इसका श्रेय मात्र उनके सैनिकों को दिया गया है।

5. ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार जयसिंह से वार्ता करने पं. रघुनाथ पंत को शिवाजी ने भेजा था। **शिवराजविजय** के अनुसार यह कार्य माल्यश्रीक, वृद्ध पुरोहित और भूषण ने सम्पन्न किया।

6. जयसिंह के साथ हुई सन्धि-शर्तों में राजकुमार मुअज्जम और राजकन्या रोशनआरा के प्रत्यर्पण की पुष्टि इतिहास से नहीं होती।

7. रुद्रमण्डल दुर्ग पर शिवाजी के सैनिकों की विजय का समर्थन भी इतिहास से नहीं होता।

8. **शिवराजविजय** के अनुसार शिवाजी मुग़ल दरबार में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली गये थे – कुछ इतिहासकारों के मत से दिल्ली-गमन समर्थित होता है, किन्तु अधिसंख्य आधुनिक इतिहासकारों ने आगरा-गमन लिखा है।

9. ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार शिवाजी के साथ उनके पुत्र शम्भाजी भी मुग़ल दरबार में गये थे, किन्तु **शिवराजविजय** के तद्विषयक विवरण में इसका उल्लेख नहीं है।

इसी प्रकार के छोटे-मोटे कुछ अन्य परिवर्तन भी कथानक में दिखलाई देते हैं। इन परिवर्तनों के मूल का सन्धान करने पर निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं–

(1) **शिवराजविजय** ऐतिहासिक उपन्यास है, इतिहास नहीं। एक समीक्षक के

---

1. *Shivaji and His Times* – J.N. Sirkar, page 65.

अनुसार "इतिहासकार के लिए बाह्य घटनायें मुख्य हैं। आन्तरिक भावनाओं का भी वह कभी-कभी वर्णन करता है, किन्तु उतना ही, जितना कि बाह्य घटनाओं से अनुमेय हो सके। उपन्यासकार पात्रों के मन का विश्लेषण ही नहीं करता, वरन् वह एक विश्वासपात्र की भाँति पात्रों के मन का आन्तरिक रहस्य भी बतलाता है।"[1]

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि **शिवराजविजय** के रचयिता के लिए यह बात इतना महत्त्व नहीं रखती कि शिवाजी इस किले में बन्दी हुए या उस क़िले में – यह तो इतिहासज्ञ का कार्य है। उपन्यासकार के लिए तो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वह वैचारिक अथवा भावनापूर्ण प्रतिक्रिया है जो किले में बन्दी होने पर शिवाजी के अन्तर्मन में घटित हुई। इतिहासकार की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक है। इसी कारण दोनों के सत्यों में भी कुछ आपेक्षिक अन्तर है। इतिहासकार जहाँ केवल घटनाजन्य सत्य प्रस्तुत करता है, वहीं उपन्यासकार का प्रयत्न ऐसे बृहत्तर सत्य को निरूपित करने का रहता है, जो सम्पूर्ण मानवीय फलक पर घटित हो सके। साहित्यालोचक हडसन की यह धारणा बहुत सही है कि उपन्यास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त अन्य सभी बातें सत्य होती हैं, जबकि इतिहास में नामों और तिथियों के अतिरिक्त और कुछ भी सच नहीं होता।[2] इतिहास-लेखक शोध करके केवल परिस्थितियों और घटनाओं का वर्णन करता है, उनकी रचना नहीं करता। इसके विपरीत उपन्यासकार एक आशावादी वैज्ञानिक के सदृश नई परिस्थितियों का निर्माण कर सामाजिक प्रयोग भी करता है।[3] तथापि दोनों एक दूसरे के उपकार्य-उपकारक हैं। उपन्यासकार के लिए सामग्री जुटाने का कार्य इतिहासकार ही करता है। इतिहासकार का कार्य जहाँ समाप्त होता है, वहीं उपन्यासकार का प्रारम्भ होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने दोनों के मध्य विद्यमान पारस्परिक अन्तर को यों प्रदर्शित किया है – "उपन्यास में इतिहास मिल जाने से एक विशेष रस संचरित हो जाता है, उपन्यासकार एकमात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें विशेष चिन्ता नहीं होती।"[4]

इन्हीं सब कारणों से **शिवराजविजय** के लेखक ने अपनी और अपने पाठकों की रुचि, दृष्टिकोण और सामयिक आवश्यकता के अनुरूप यथावश्यक परिवर्तन किये हैं। शिवराज (शिवाजी), जयसिंह, औरंगज़ेब, माल्यश्रीक (मालुसरे) एवं रोशनआरा प्रभृति ऐतिहासिक पात्रों के साथ ही व्यास जी ने कुछ कल्पित पात्रों की सृष्टि भी

---

1. **काव्य के रूप** : डॉ. गुलाबराय, पृष्ठ 153

2. In fiction everything is true except names and dates; in history nothing is true except names and dates.
-- W.H. Hudson, *An Introduction to the Study of Literature*, page 136.

3. **काव्य के रूप**: गुलाबराय, पृष्ठ 153

4. "ऐतिहासिक उपन्यास" शीर्षक निबन्ध, पृष्ठ 125-27

की है। इनमें मुख्य हैं – रामसिंह, गौरसिंह, क्रूरसिंह, श्यामसिंह, देवशर्मा, ब्रह्मचारी, सौवर्णी और चाँद ख़ाँ इत्यादि। कल्पित होते हुए भी ये तत्कालीन ऐतिहासिक व्यक्तित्त्वों में से ही गढ़े हुँए लगते हैं। नायक के चरित्र को पूर्ण उदात्त बनाने के लिए भी लेखक ने मूल तथ्यों में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किये हैं।

(2) जिस समय इस उपन्यास की रचना हुई, उस समय तक शिवाजी की ओर इतिहासकारों का घोर दुर्लक्ष्य था। टाल ब्वायज हीलर, ग्राण्ट डफ इत्यादि इतिहासकारों ने तो शिवाजी को 'पहाड़ी चूहा', 'दग़ाबाज' और 'लुटेरा' आदि कहकर उनका परिहास ही किया है। मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों ने भी शिवाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति प्रायः न्याय नहीं किया है। यद्यपि सर जदुनाथ सरकार, सभासद, वाकणीस इत्यादि ने सत्य को उपस्थित करने का भी श्लाघ्य प्रयत्न किया है, किन्तु इस उपन्यास के लेखन-काल तक शिवाजी के विषय में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री का नितान्त अभाव था।

अतः यह स्वाभाविक ही था कि व्यास जी को इस विषय में जो सूत्र मिले, इतिहास के साथ उनका तादात्म्य बिठाने के लिए अपनी बुद्धि का ही वे आश्रय लेते। **शिवराजविजय** की कथावस्तु के मूल में ग्राण्ट डफ कृत **हिस्ट्री आफ द मराठाज़** तथा बाङ्ला के उपन्यासद्वय **महाराष्ट्र जीवनप्रभात** (रमेशचन्द्र दत्त कृत) और **अंगुरीय विनिमय** (भूदेव मुखोपाध्याय कृत) से प्राप्त सामग्री निहित रही है। शिवाजी और रोशनआरा की प्रणय-कथा पहले **अंगुरीय विनिमय** में ही चित्रित हुई – वहीं से व्यास जी ने इसे लिया है। 'रघुवीर-सौवर्णी' की प्रासंगिक कथा पर **महाराष्ट्र जीवनप्रभात** में आई रघुनाथ हवलदार और सरयू की कथा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं की समान्तर योजना

शिवराजविजय में शिवाजी के जीवन की सन् 1657 ई. से 1667 ई. तक दस वर्षों के मध्य घटी घटनायें ही नियोजित हैं। यही आधिकारिक कथा है, जिसके महानायक शिवाजी हैं। इसी के साथ एक प्रासंगिक कथा भी समानान्तर गतिमती है, जिसका नेता रामसिंह है। दोनों कथाएँ परस्पर पूरक हैं। एक कल्पित और दूसरी इतिहासनिष्ठ। ऐतिहासिक कथा को गति देने के लिए ही कल्पित कथा की योजना हुई है। कथावस्तु के विषय में संस्कृत की साहित्य-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली[1] में कहा जा सकता है कि शिवाजी विषयक कथावस्तु 'प्रख्यात' है, रघुवीर की प्रासंगिक कथा 'उत्पाद्य' श्रेणी में है, और उभयविध कथाओं के परस्पराश्रित होने के कारण

---

1. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधाऽपि तत् त्रिधा । –**दशरूपक**, 1.15

यह 'मिश्रित' भी है। इस कथावस्तु में, पाँचों अर्थ प्रकृतियाँ (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) तथा सभी कार्यावस्थाएँ (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम) भी घटित हो जाती हैं।[1] प्रथम विराम में शिवाजी और उनके सहायकों का शत्रु-पराजय के निमित्त सचेष्ट होना आरम्भ है। बारहवें निश्वास के अन्त में शिवाजी के द्वारा महाराष्ट्र की पूर्ण स्वाधीनता-प्राप्ति ही फलागम है। रघुवीरसिंह के द्वारा सौवर्णी की प्राप्ति भी यही है।

कथावस्तु की संघटना : शिवराजविजय की कथावस्तु में मौलिकता, सम्भाव्यता, सुसंघटितता और रोचकता इत्यादि अच्छे कथानक के सभी गुण विद्यमान हैं। विषय की नवीनता के साथ ही वर्णन में मौलिकता और शैलीगत विशिष्टता भी हैं। कथानक की उलझनों को तर्कसंगत ढंग से चतुरतापूर्वक सुलझाया गया है। घटनाक्रम का विन्यास ऐसा है कि ज्यों-ज्यों कथानक आगे बढ़ता है, उसकी पेचीदगी और अन्य सभी बातों की व्याख्या स्वयमेव होती जाती है। ऐतिहासिक कृतियों में वैरस्य उत्पन्न करने वाली कालविपर्यस्त मान्यताएँ प्रायः नहीं हैं। कथानक में संघटन, क्रम और संगति प्रायः सर्वत्र है। घटनाओं में कार्य-कारण-शृंखला है, किन्तु उसके अतिरेक का अभाव है, इस कारण कृत्रिमता का आभास नहीं होता। कथावस्तु में स्वाभाविकता के साथ ही स्वच्छन्दता भी है। रोचकता बनाये रखने के लिए कुतूहल और नवीनता का सर्वत्र आश्रय लिया गया है। कथावस्तु के विषय में व्यास जी की अवधारणा है – "उपन्यास बाँधने वाले को चाहिए कि पहले तो कहानी उत्तम चुने, और फिर उसमें और भी नाना पात्रों और घटनाओं की कल्पना करके उसे अधिक मनोहर करे। .... बरावर उत्कण्ठा बढ़ती ही चली जाये, हृदय उसमें डूबता ही जाये, और एक घटना हो रही है कि दूसरी का आभास आ गया।"[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वयं अपनी ही कसौटी पर लेखक पूर्णतया खरा सिद्ध हुआ है।

व्यासजी के कार्य-काल में, हिन्दी में बाबू देवकीनन्दन खत्री अत्यन्त रोचक जासूसी उपन्यासों की सृष्टि करने में लगे थे। व्यास जी खत्री जी के घनिष्ठ मित्रों में से थे। इसलिये शिवराजविजय के कथानक के विकास में कहीं-कहीं जासूसी उपन्यासों जैसा जो कुतूहल और रोमांचकता दिखलाई देती है, वहाँ वे निश्चित ही खत्री जी से प्रभावित जान पड़ते हैं – विशेषकर उन अंशों में, जहाँ गुप्तचरी के प्रसंग हैं – यह प्रभाव अधिक ही दृष्टिगोचर होता है।

---

1. पं. अम्बिकादत्त व्यास : एक अध्ययन, डॉ. कृष्ण कुमार, पृष्ठ 66-70
2. गद्यकाव्यमीमांसा : अम्बिकादत्त व्यास, काशी।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

उपन्यास के घटक तत्त्वों में पात्र-योजना एवं चरित्र-चित्रण का विशिष्ट स्थान है। उसकी सफलता में इन दोनों की प्राणाधायक भूमिका है।

द्वादश निश्वासों में निबद्ध उपन्यास में सभी वर्गों से पात्रों का चयन सर्वथा स्वाभाविक है। ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ कल्पित पात्रों की मानसी सृष्टि भी आवश्यक थी। इतिहास से सिद्ध पात्रों में शिवाजी, कवि भूषण, माल्यश्रीक, अफ़जल खाँ, शाइस्ता ख़ाँ, कुमार मुअज्जम, राजा जयसिंह और यशवन्त सिंह हैं। रघुवीर, सौवर्णी, पुरोहित देवशर्मा, ब्रह्मचारि-गुरु, गौरसिंह, श्यामसिंह, क्रूरसिंह, बदरुद्दीन, चांदखाँ आदि पात्रों का व्यक्तित्त्व व्यास जी की प्रतिभा से गढ़ा है। कथा-सूत्र के आयामों को देखते हुए पात्रों के परस्पर भिन्न व्यक्तियों का निर्माण भी अनिवार्य कहा जायेगा। इनमें से कुछ प्रवृत्तियों के प्रदर्शक प्रतिनिधिपात्र हैं और शेष व्यक्तित्त्वप्रधान। इनकी अपनी निजी विशेषताएँ हैं। चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक और नाटकीय दोनों प्रकार से हुआ है। इसमें सर्वत्र सजीवता और स्वाभाविकता है। व्यास जी ने अपने बहुत से पात्रों के नामों का संस्कृत में रूपान्तर कर दिया है और यह कार्य अनायास नहीं, सप्रयोजन है। कुछ नामान्तर ये हैं – ताना जी मालुसरे (माल्यश्रीकः), अफ़जल ख़ाँ (अपजलखानः), मुअज्जम (मायाजिह्मः), रोशनआरा (रसनारी), रहमत ख़ाँ (रहोत्तमखानः) मोहब्बत ख़ाँ (मोहावर्त्तखानः), मोहम्मद (महामद), औरंगज़ेब (अवरंगजीवः)। इन रूपान्तरों से प्रतीत होता है कि कवि के मानस में अपने पात्रों की प्रकृति, परिवेश और व्यक्तित्त्व का एक सुनिश्चित बिम्ब था। पात्रों में शिवाजी और रघुवीरसिंह जैसे उच्चवंशज, उदात्त और उन्नत व्यक्तित्त्व जहाँ हैं, वहीं द्वारपाल जैसे निम्नवर्गीय पात्र भी हैं, जो अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा और स्वामिभक्ति के बल पर प्रथम परिचय में ही अपना स्थान बना लेते हैं। कुछ प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण इस प्रकार है –

शिवाजी – उपन्यास के नायक हैं – इनके नाम का संस्कृत रूप है शिववीर। उनकी बाह्य देहयष्टि कुछ छोटे कद, श्यामवर्ण, सुदृढ़, विशाल ललाट, प्रबल भुजदण्डों, आरक्त नेत्रों और वर्तुल श्यामश्मश्रुओं से युक्त है। उसे देखकर विग्रहवती वीरता की प्रतीति होती है। पठन-पाठन से रहित होने पर भी वे राजनीति में निष्णात हैं।[1] न्याय, परोपकार, साहस, उदारता और सद्यः निर्णय लेने की क्षमता से वे युक्त हैं। उच्च आदर्शों से अनुप्राणित श्रेष्ठ चरित्र की वे साकार मूर्ति हैं। शिवाजी ने वैदिक धर्म की रक्षा का व्रत ले रखा है; संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, तपस्वियों और संन्यास,

1. **शिवराजविजय** : पृष्ठ 63-65, दशम संस्करण, (इस पुस्तिका में सर्वत्र दशम संस्करण से ही संदर्भ प्रदत्त हैं)। 1969, काशी।

ब्रह्मचर्य तथा तपस्या के विघ्नों के वे विनाशक हैं। प्रारम्भ में वे यवनों के शोणित की प्याली खड्ग से युक्त, मराठों के मुकुटमणि, नीति-निधान, निपुणता के कुलागार, परम उत्साही और सनातन धर्म के दृढ़ पालक के रूप में चित्रित हैं।[1] लेखक का विश्वास है कि संभवतः शिव ने ही शिवाजी के रूप में अवतार धारण किया है। वे कविता और कला के मर्मज्ञ हैं, गुणियों के आश्रयदाता हैं। अवसर को पहचानकर कार्य करने वाले हैं। उनकी वीरता से शत्रु आतंकित हैं और नायकोचित गुणों के कारण शत्रुतनया रसनारी (रोशनआरा) उन पर अनुरक्त हो जाती है लेकिन वे उसकी प्रणय-याचना को समझा-बुझाकर अस्वीकार कर देते हैं। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते, जो शास्त्र और धर्म की मर्यादा से रहित हो। उनकी प्रतिज्ञा है – "देहं वा पातयेयम्, कार्यं वा साधयेयम्" सेवकों का उन पर अटूट विश्वास है – वे उनकी परिश्रमशीलता, साहसिकता, संकल्प और दृढ़ निश्चय से आश्वस्त हैं।[2] आक्रमणों और युद्धों के समय उनका साहस देखते ही बनता है। संकट से उबरने की कला का परिचय उन्होंने दिल्ली से भाग निकलते समय दिया। संस्कृत-काव्यशास्त्र में निरूपित नायक के विभिन्न गुणों[3] – विनम्रता, माधुर्य, त्याग-भावना, दक्षता, प्रियंवादित्व, बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञायुक्तता – से वे सम्पन्न हैं। उनके द्वारा केवल एक ही चूक दिखलाई देती है – क्रूरसिंह की शिकायत पर बिना जाँच-पड़ताल किये ही रघुवीरसिंह पर सन्देह करते हुए उसे निर्वासित कर देना। इसे भी बाद में सुधार लेते हैं तथा खेद प्रकट करते हुए रघुवीरसिंह को उच्च पद प्रदान कर देते हैं। अपने विरोधी रहमत ख़ाँ की स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर शिवाजी उसे उदात्ततापूर्वक मुक्त कर देते हैं। विदा लेते समय उसका कथन शिवाजी के बड़प्पन को पूरी तरह उजागर कर देता है –

> महाराज! वृद्धोऽसौ बहुभिर्युद्धवान्, किन्तु न भवादृशो
> वीरराज एव दृष्टः, न वा भावत्का इव योद्धारः एव दृष्टाः।

अफ़जल ख़ाँ – शिवाजी के ठीक विपरीत चरित्र है अफ़जल ख़ाँ का। इसका पानी वास्तव में उतरा हुआ है अतः नाम का 'अपजल' रूपान्तर सार्थक ही है। यह अत्याचारी, धर्मद्वेषी और विलासी है। नृत्य-गान और विलास-लीलाओं का प्रेमी है। शत्रु-मित्र की न इसे पहचान है और न इसके अनुचरों को। मन्त्र को गुप्त रख पाना इसके लिए असम्भव है। यह विकत्थी (शेख़ीबाज़) और अदूरदर्शी है। संकट के समय में भी अपने ऊपर संयम नहीं रख पाता। अपशब्दों के उच्चारण में इसे कोई संकोच

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 35, दशम संस्करण।
2. शिवराजविजय पृष्ठ 172 –"यस्याध्यक्षः स्वयं परिश्रमी.... यस्य प्रभुः स्वयं साहसी, यस्य स्वामी स्वयमादो न गणयति।"
3. दशरूपक 2.1-2

नहीं है। रसोइया भी इससे अधिक कूटनीति जानता है। इसके सैनिकों तक का इस पर विश्वास नहीं है। यह जानते हुए भी कि शिवाजी साधारण व्यक्ति नहीं – यह नाच-गाना, मद्य-पान, वेश्या-विलास आदि में दिन काटता है। इसके सैनिक भी समझते हैं कि अफ़ज़ल ख़ाँ का पतन निकट है – "यवनानां पराजयो भविष्यति। अपजलखानो विनङ्क्ष्यति, ध्रुव एव तस्य विनाशः।[1] और अन्त में ऐसा ही होता है।

गौरसिंह – यह कल्पित पात्र है, जो स्वस्थ और सुगठित शरीर यष्टि वाला, शस्त्र-चालन में कुशल, वेश-परिवर्तन में निपुण, गुप्तचरी के कार्य में अत्यन्त प्रवीण, विश्वसनीय, अवसर को पहचानकर वार्तालाप कर सकने की क्षमतायुक्त, गायन कला में दक्ष और उच्च चरित्र से समन्वित है। देशान्तर-भ्रमण से देश-कालविद् है। अफ़ज़ल ख़ाँ के द्वारा गृहीत पाँच ब्राह्मण बालकों को गौरसिंह ने अकेले ही छुड़ाया है। रोशनआरा और मुअज्जम के हरण का श्रेय भी इसे ही है। अपनी योग्यता से बाद में यह मण्डलेश्वर का पद प्राप्त करता है।

श्यामसिंह – यह गौरसिंह का भाई है, केवल रंग में साँवला है। शेष गुणों की दृष्टि से गौरसिंह के सदृश ही है।

रघुवीरसिंह – इसे इस उपन्यास का सहनायक कहा जा सकता है। सौवर्णी की प्रणयगाथा का यह नायक भी है। इसका वास्तविक नाम रामसिंह है तथा जयपुर के जागीरदार वीरेन्द्रसिंह का पुत्र है। उपन्यास में प्रथम बार यह चतुर्थ निश्वास में प्रकट होता है – उस समय आँधी-पानी की भी चिन्ता न करते हुए यह शिवाजी के पत्र को पहुँचाने के लिए आकुल दिखलाई देता है। रघुवीरसिंह अत्यन्त परिश्रमी, साहसी, आपत्तियों को न गिननेवाला तथा संकल्प को सिद्ध करनेवाला है। यह स्वामी का पूर्ण विश्वासपात्र है। चाँद ख़ाँ और शाइस्ता ख़ाँ के पुत्रों के आक्रमणों से शिवाजी की रक्षा करता है। रुद्रमण्डल दुर्ग के अभियान में साहस की सजीव प्रतिमा-सा रघुवीर गढ़ के अन्दर कूदकर किलेदार रहमत ख़ाँ को जीवित ही पकड़ लेता है। क्रूरसिंह की मिथ्या शिकायत पर विश्वासघात करने का झूठा आरोप लगने और निर्वासित किये जाने पर भी इसकी स्वामिभक्ति में कोई न्यूनता नहीं आती। गुप्तरूप से शिवाजी के साथ रहकर उनकी विभिन्न विपत्तियों से रक्षा करता है। बाद में शिवाजी के प्रसन्न होने पर मण्डलेश्वर का पद प्राप्त करता है। इसके पराक्रम,

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 82-83

भक्ति-भावना, सौजन्य, स्वच्छता, उत्साह, वीरता की प्रशंसा स्वयं शिवाजी ने की है।[1]

द्वारपाल – यह प्रताप दुर्ग, जिसमें शिवाजी रहते हैं, का दौवारिक है। इसका चरित्र बहुत ही स्पृहणीय है। बड़े-से-बड़े उत्कोच का प्रलोभन इसे डिगा नहीं पाता। गौरसिंह के द्वारा छद्मवेश में सुवर्णनिर्माणविद्या का प्रलोभन दिये जाने पर द्वारपाल की यह उक्ति हृदय में तीर की तरह तराज़ हो जाती है – "अरे, कपटी संन्यासी, तू मुझे विश्वासघात और स्वामी के साथ दग़ाबाज़ी करने की सीख देता है। वे हरामज़ादे कोई और होंगे, जो रिश्वत के लोभ से मालिक को धोखा देकर अपने को घोर अँधेरे में डालते हैं। हम छत्रपति शिवाजी के सेवक वैसे नहीं हैं –

> "हंहो ! कपटसंन्यासिन् ! कथं विश्वासघातं स्वामिवचनं च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जारजाताः, ये उत्कोचलोभेन स्वामिनं वंचयित्वा आत्मानमंधतमसे पातयन्ति। न वयं शिवगणास्तादृशाः।"[2]

अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण

शिवाजी के सहायकों में ब्रह्मचारिगुरु (वीरेन्द्र सिंह) मुनि-वेष धारण करके, आश्रम के अध्यक्ष के रूप में, वटुकों को धर्मरक्षार्थ शस्त्र शिक्षा देते हैं। पुत्र-वियोग से विषण्ण हृदय होने पर भी कर्त्तव्य-पालन में वे सजग हैं। रघुवीरसिंह इन्हीं का पुत्र है, जिसे सामने रहने पर भी वे पहचान नहीं पाते। बाद में पुत्र को राज्य देकर स्वयं काशीवास स्वीकार कर लेते हैं।

माल्यश्रीक (मालुसरे) यह शिवाजी के बचपन के मित्र हैं। यह परमवीर, अतीव साहसी, तलवार चलाने में निपुण और शिवाजी के परमभक्त हैं। शाइस्ता ख़ाँ के अभियान में तो वह साथ रहे ही, उनके साथ दिल्ली भी जाते हैं। इतिहास ग्रन्थों के अनुसार वे प्रतापदुर्ग के समीपस्थ उमराठा नामक गांव के रहने वाले थे। कोंडाणा दुर्ग, जिसका बाद में 'सिंहगढ़' नाम पड़ा, की विजय में ही इनका बलिदान हुआ था। मराठी में, 'गढ़ आला, पणसिंह गेला' की कहावत इन्हीं के लिए प्रसिद्ध है।[3]

मुरेश्वर भी शिवाजी के बालमित्र और सेनापति हैं। चिकित्सक के वेष में, दिल्ली

---

1. **शिवराजविजय**, पृष्ठ 837 – "वत्स रघुवीर ! स्मारं स्मारं तव परं पराक्रमम्, परांभक्तिम्, परं सौजन्यम्, परां स्वच्छतां, परमुत्साहम्, परांवीरताम्, परं सौहार्दम्, परां च दृढप्रतिज्ञताम्, महापरिणाहमिव मे सम्पद्यते हृदयम्।"

2. **शिवराजविजय**, द्वितीय निश्वास, पृष्ठ 59

3. नानाजी मालुसरे (माल्यश्रीक) के विषय में विशेष जानकारी के लिए प्र. ग. सहस्त्रबुधे का इसी नाम का ग्रन्थ, जो लोकहित प्रकाशन, लखनऊ से प्रकाशित है, अवलोकनीय है।

से निकलने में शिवाजी की सहायता यही करते हैं। योगिराज के रूप में प्रथम निश्वास में प्रस्तुत चरित्र यौगिक चमत्कारों का निदर्शक है। सुदीर्घ समाधि की उन्हें सिद्धि प्राप्त है। परोक्ष वस्तुओं की जानकारी भी वे समाधि से कर लेते हैं।

एक स्वाभिमानी कवि के रूप में भूषण का चरित्र भी स्पृहणीय है। दिल्लीश्वर की सेवा से विमुख होकर उन्होंने शिवाजी को अपना आश्रयदाता बनाया है, जिन्हें वीररस की ओजस्वी कविताएँ सुनाकर वे प्रेरणा प्रदान करते हैं। क्रूरसिंह शिवाजी का सेनापति है, जो बाद में विश्वासघाती हो जाता है। सौवर्णी से छेड़छाड़ करने के कारण यह व्यभिचारी प्रवृत्ति का है। इसका चित्रण नीच तथा असत्य–प्रतिज्ञ के रूप में हुआ है जो विश्वस्त, निष्कपट तथा उपकारी रघुवीरसिंह पर विश्वासघात का मिथ्या आरोप लगाता है। बाद में इसे अपने कुकृत्यों का दण्ड प्राप्त होता है।

शिवाजी के अन्य सहायकों में पुरोहित देवशर्मा तथा गणेश शास्त्री भी हैं। इनमें देवशर्मा विद्वान् और भविष्यवक्ता हैं। गणेशशास्त्री अपने यजमान वीरेन्द्रसिंह के पुत्र के रक्षक हैं।

शिवाजी के विरोधियों में अफ़जल ख़ाँ का उल्लेख पहले हो चुका है। दूसरा प्रमुख विरोधी औरंगज़ेब है। हिन्दुओं का उत्पीड़न करने के कारण लेखक ने इसे मूर्तिमान कलियुग और अधर्म का अवतार बतलाया है – "मूर्तिमदिव कलियुगं, गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति।"[1]

शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए यह कभी शाइस्ता ख़ाँ को, फिर जयसिंह को भेजता है। यह अत्यन्त स्वार्थी, धूर्त और दुष्ट प्रकृति का है। पिता और भाइयों के साथ इसका निन्दनीय व्यवहार रहा। यह अविश्वासी भी है – अपने हिन्दू सेनापतियों तक पर इसे विश्वास नहीं है। यशवन्तसिंह और जयसिंह, जो इसके प्रति निष्ठावान् हैं, की भी यह मृत्यु-कामना करता है। शिवाजी को सन्धि के माध्यम से दिल्ली बुलाकर उनके साथ विश्वासघात करता है। इसके दोषों की संख्या अनन्त है। उपन्यास का प्रतिनायक इसे माना जा सकता है।

शाइस्ता ख़ाँ, चाँद ख़ाँ, मुअज्जम और जयसिंह भी शिवाजी के विरोधियों के रूप में चित्रित हैं। इनमें जयसिंह शिल्पकला और ज्योतिष का विद्वान् है। यह मुग़लों की अधीनता को स्वीकार कर लेने वाले राजपूत राजाओं के व्यक्तितत्त्व का प्रतीक पात्र है, जिसमें वैयक्तिक वीरता और गुणवत्ता की न्यूनता न होते हुए भी उन विराट राष्ट्रीय हितों की समझ नहीं है, जिनके लिए शिवाजी संघर्षशील हैं। शिवाजी को दिल्ली दरबार में जाने के लिए यह सहमत कर लेता है। दिल्ली में जयसिंह का पुत्र रामसिंह शिवाजी की सहायता करता है।

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 33

बीजापुर दरबार का सेनापति और रुद्रमण्डल दुर्ग का अध्यक्ष रहमत खाँ भी एक अविस्मरणीय चरित्र है। यह वीर, स्वामिभक्त और कृतज्ञ है। उसकी वीरता और स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर, शिवाजी उसे बन्दी बनाने पर भी, मुक्त कर देते हैं। बीजापुर के प्रति निष्ठावान् होने के कारण वह शिवाजी की सेवा यद्यपि स्वीकार नहीं करता, किन्तु उनके उपकार के प्रतिकार-स्वरूप शिवाजी की सेना में विद्यमान विश्वासघातियों की सूचना अवश्य देता है।

शिवराजविजय में नारी-चरित्र केवल दो ही हैं – सौवर्णी तथा रसनारी (रोशनआरा) सौवर्णी रघुवीरसिंह की प्रेयसी है। रंग-रूप से सम्पन्न है। बचपन में एक यवन युवक ने उसका अपहरण कर लिया था, जिससे गौरसिंह उसे छुड़ाता है। हनुमान-मन्दिर में उसका पालन-पोषण होता है। वहीं उसे देखकर रघुवीरसिंह मुग्ध हो जाता है। सौवर्णी दृढ़ चरित्र की युवती है। क्रूरसिंह की छेड़छाड़ से वह तनिक भी विचलित नहीं होती। रघुवीर का वरण करने के लिए वह कृतसंकल्प है। अन्त में उसके साथ उसका विवाह हो जाता है।

इसके विपरीत चरित्र है औरंगज़ेब की पुत्री रसनारी या रोशनआरा का। शिवाजी के सम्पर्क में आने पर यद्यपि वह उनके प्रति आकर्षित होती है, प्रेमनिवेदन भी करती है – किन्तु सफल नहीं होती। अन्त में वह आत्महत्या कर लेती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। प्रत्येक पात्र की भूमिका दूसरे से भिन्न है। कोई भी चरित्र 'टाइप्ड' नहीं हो सका है।

संवाद

संवादों का प्रयोजन यद्यपि कथा-क्रम का विकास करना होता है, तथापि वे पात्रों के व्यक्तित्त्व का उद्घाटन भी कर देते हैं। इस सन्दर्भ में स्वयं व्यास जी की अवधारणा यह है –

"परस्परमथालापे स्वभावोक्तिः प्रशस्यते।"

"–आपस की बातचीत में स्वभावोक्ति का अधिक ध्यान रखे, अर्थात् पात्रों का जैसा-जैसा स्वभाव (सच्चा, झूठा, चंचल, गम्भीर, सज्जन, दुष्ट आदि) बाँधा है, जैसा वय आदि के अनुसार प्राप्त है और जैसा उस घटना पर हो सकता है, उसी के अनुसार आलाप करावे, उसके विरुद्ध न होने पावे।"[1]

---

1. गद्यकाव्यमीमांसा, पृष्ठ 7-8 –इसी प्रकार के विचार पाश्चात्य समीक्षक हडसन ने भी व्यक्त किये हैं –

Investigations show that while dialogue may frequently be employed in the evolution of the plot -the action moving (as often in the drama) beneath conversation its principal function is in direct connection with character.

- *An Introduction to the Study of Literature*, page 154

शिवराजविजय की संवाद-योजना में व्यास जी ने अपनी अवधारणा को अधिकांशतया चरितार्थ किया है। वैसे तो सम्पूर्ण प्रबन्ध में ही संवादों का प्राचुर्य है, किन्तु अपने चुटीलेपन के कारण जो बहुत ही रोचक बन पड़े हैं, उनमें से कुछ ये हैं –

प्रथम विराम –(1) गौर सिंह और यवन युवक का संवाद (2) संन्यासी दौवारिक-संवाद (3) शिवाजी और गौरसिंह का संवाद (4) अफ़जल ख़ाँ और तानरंग का संवाद (5) शिवाजी और गोपीनाथ का संवाद (6) दुर्गाध्यक्ष और अश्वारोही का संवाद।

द्वितीय विराम – (7) शिवाजी और भूषण का संवाद (8) शाइस्ता खाँ से बदरुद्दीन और चाँद ख़ाँ का संवाद (9) जसवन्त सिंह और महादेव पण्डित का संवाद (10) सौवर्णी और उसकी सखियों का संवाद (11) रसनारी और शिवाजी का संवाद (12) शिवाजी और माल्यश्रीक का संवाद (13) शिवाजी और मुअज्जम का संवाद।

तृतीय –(14) शिवाजी के साथ रोशनआरा की सहचरी का संवाद (15) शिवाजी और जयसिंह का संवाद (16) शिवाजी के साथ राघवाचार्य का वार्तालाप (17) रामसिंह और औरंगज़ेब के मध्य संवाद।

कथासूत्र के विकास और पात्रों के व्यक्तित्त्व की विविध विशेषताओं को व्यंजित करने में इन संवादों की सार्थकता है। संवाद प्रायः परिस्थिति और पात्र के बौद्धिक स्वरूप के अनुरूप हैं।

द्वारपाल और संन्यासिवेशधारी गौरसिंह के मध्य हुए वार्तालाप के कुछ रोचक अंश इस प्रकार हैं :–

"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति बधिरः ?"
दौवारिकः – शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि?"
संन्यासी – कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्तिरस्करोषि ?
दौवारिकः – भगवन् ! भवान् संन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददेवाऽऽयातीत्याक्रुश्यते।"

(–"अरे ! यह कौन बहरा विना मुझे उत्तर दिये ही मरने के लिए बढ़ता चला आ रहा है ?"
"द्वारपाल – क्यों बेकार मरणासन्न और बहरा कह रहे हो ?"
संन्यासी – हम संन्यासियों को भी कठोर वचनों के द्वारा अपमानित क्यों करते हो ?
दौवारिक – भगवन् ! आप संन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम में हैं, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ, किन्तु आप महाराज की आज्ञा का उल्लंघन कर अपना परिचय दिये बिना ही आ रहे हैं – इसलिए हम आप पर विगड़ रहे हैं –)

उपर्युक्त उद्धरण में द्वारपाल के व्यक्तित्व की विशेषता का उद्घाटन रोचक ढंग से हुआ है।

स्वाभाविकता और संक्षिप्तता की दृष्टि से अफ़जल खाँ और गौरसिंह (उपाख्य तानरंग) के मध्य सम्पन्न यह वार्तालाप द्रष्टव्य है –

"अपजलखानः – किन्देशवास्तव्यो भवान् ?

तानरंगः – श्रीमन् राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि।

अपजलखा़नः – ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?

तानरंग – आम् ! श्रीमन् !

अपजलखानः – तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तानरंग – सेनापते ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशाद्देशं पर्याटयति।

अपजलखानः – आ ! एवम् तत्किं प्रायः पर्यटति भवान् ?

तानरंग – एवं चमूपते ! नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुम्, नूतना-नूतना गान-परिपाटीश्च कलयितुम् एधमामहाभिलाषा एष जनः।"

संवादों में व्यंग्यात्मकता भी कहीं-कहीं है – द्वारपाल और संन्यासी के संवाद में 'नतु भवादृशः ये तुम्बीं गृहीत्वा द्वाराद् द्वारम्' में द्वार-द्वार पर तूंबी लेकर घूमनेवाले संन्यासियों पर तीव्र व्यंग्य किया गया है।

शिवराजविजय के संवादों में कहीं-कहीं गहरी नाटकीयता परिलक्षित होती है। यदि उपन्यास का नाट्य-रूपान्तर किया जाये, तो रूपान्तरकार को नये सिरे से संवाद-लेखन की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ेगी – उसका प्रयोजन वर्तमान संवादों से ही पूर्ण हो जायेगा।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति के संवाद कथा-क्रम को आगे बढ़ाते हुए पात्रों के व्यक्तित्त्व को उजागर करने में पूरी तरह समर्थ हैं। संवादों में स्वाभाविकता, रोचकता, चुटीलापन, सार्थकता और संक्षिप्तता के साथ ही अपेक्षित नाटकीयता भी है। कुतूहल और शौर्य के साथ ही प्रणय के सदृश कोमल भावनाओं के सम्प्रेषण में भी **शिवराजविजय** के संवाद पूर्णतया उपादेय हैं।

देश-काल

समीक्षक हडसन के अनुसार कथानक को वास्तविकता तथा पात्रों के व्यक्तित्त्व और घटना-क्रम को गति देने के लिए वातावरण की प्रस्तुति आवश्यक है। इसके अन्तर्गत आचार-विचार, रीतियों एवं प्रथाओं, राजनैतिक तथा सामाजिक परिवेश एवं विचारधारा तथा नैसर्गिक पर्यावरण का निरूपण किया जाता है।[1]

---

1. In this term we include the entire milieu of a story – the manners, customs, ways of life, which enter into its composition as well as its natural background or environment.

– W.H. Hudson : *An Introduction to the Study of Literature*, page 158.

शिवराजविजय में वर्णित इतिहास का काल 17 वीं शती के षष्ठ दशक के समापन वर्ष से लेकर अष्टम दशक के आरम्भिक दो वर्षों (1659 ई० से 1672 ई०) तक है। उस समय के भौगोलिक, राजनैतिक, और सामाजिक जीवन का पर्याप्त विवरण सँजोने की चेष्टा व्यास जी ने की है। उस समय के राज्यों, नगरों, नदियों, पर्वतों और समुद्रों के साथ ही दुर्गों का उल्लेख भी है। कहीं-कहीं कुछ भौगोलिक विवरण में त्रुटि भी हो गई है। दिल्ली, पूना, काशी, उदयपुर, सूरत, अहमदनगर इत्यादि नगरों का अच्छा वर्णन है।

राजनैतिक दृष्टि से औरंगज़ेब का शासन, दक्षिण को छोड़कर पूरे देश पर दिखलाया गया है –

"आलमगीरोपाधिधारी अवरंगजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु मत्स्येषु मगधेषु अङ्गेषु वङ्गेषु कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।"[1]

"शाइस्ता खाँ दक्षिण का शासक है, किन्तु महाराष्ट्र पर वर्चस्व शिवाजी का है। बीजापुर के साथ भी उनका विरोध है।"

शासकों के अत्याचारों का वर्णन करते हुए कहीं-कहीं श्लेशवैक शैली का भी आश्रय लिया गया है –

"अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् द्वारा अपह्रियन्ते, क्वचित् धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचित् गृहनिपातः इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।"[2]

साम्प्रदायिक उन्माद एवं असहिष्णुता तथा सामाजिक असुरक्षा की भयावह स्थिति का यह अत्यन्त बेबाक चित्र है।

उस समय की स्थिति का विश्लेषण करते हुए राजा जयसिंह का यह कथन उल्लेखनीय है –

"यदि भवता सह मैत्री स्वच्छेन निश्छद्मना च ह्रदा समरक्षिष्यद् दिल्लीपतिः, तदखण्डस्तस्य प्रतापो दक्षिण देशेऽपि बद्धमूलः प्राज्वलिष्यत्। भवत्खड्गमाश्रित्य स विजयपुरादिमहाराजानपि व्यजेष्यत, प्रासारयिष्यच्च स्वप्रतापं सिंहलद्वीपेऽपि।"[3] (–"यदि आपके (शिवाजी के) साथ स्वच्छ तथा निश्छल ह्रदय से दिल्लीश्वर मैत्री की रक्षा करते जो आज दक्षिणी प्रदेश में भी उनका अखण्ड प्रताप बद्धमूल

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 33-34
2. वही, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 90

हो गया होता। आपकी खड्ग का सहारा लेकर वे बीजापुर के सुल्तान को भी जीत सके होते और सिहंलद्वीप में भी अपने प्रताप को फैला लिया होता।)

मुस्लिम-शिविर में खान-पान का एक दृश्य अवलोकनीय है –

"क्वचित् खट्वासु पर्यङ्केषु चोपविष्टान् सगडगडाशब्दं ताम्रकधूममाकृष्य मुखात् कालसर्पानिव श्यामलनिश्वासानुद्गिरतः, ···· क्वचिद् हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचम् मरिचम्, चुक्रं चुक्रं, वितुन्नकं वितुन्नकम्, शृंगवेरम् शृंगवेरम्, रामठम् रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, मत्स्याः मत्स्याः, कुक्कुटाण्डम् कुक्कुटाण्डम्, पललं पललम् इति" कलकलैर्बालनां निद्रां विद्रावयतः ··· उग्रगन्धीनि मांसानि शूलाकुर्वतः यवनयुवकान् ··· ।"[1]

– (कहीं खाटों तथा पलंगों पर बैठे हुए, "गड़-गड़ शब्द के साथ हुक्के का धुआँ खींचकर मुंह से काले सर्पों के सदृश धुआँ निकालते हुए, ··· कहीं हल्दी, लहसुन, मिर्च, खटाई, सौंफ, अदरक, हींग, राब, मछलियाँ, मुर्गी का अण्डा, मछली का मांस के कोलाहल से बच्चों की नींद हराम कर रहे, दुर्गन्धित मांस के टुकड़ों को लोहे की सलाखों में फँसाकर भूनते हुए यवन-युवकों को देखा)।

प्रदेशों, ग्रामों, वनों, आश्रमों, सरोवरों और नदियों का विपुल वर्णन तो शिवराजविजय में है ही, साथ ही सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, निशा आदि के भी सुन्दर चित्र व्यास जी ने उकेरे हैं। सूर्योदय-वर्णन से ही ग्रन्थ का आरम्भ हुआ है।

आषाढ़ मास के सूर्यास्त का एक मनोहर वर्णन यों है – "मासोऽयमाषाढ़ः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जिगामिषुर्भगवान् भास्करः सिन्दूरद्रवस्नातानामिव वरुणदिगवलम्बिनामरुणवारिवाहानामाभ्यन्तरं प्रविष्टः।"[2]

– आषाढ़ का महीना है और सन्ध्या का समय। अस्ताचल पहुँचने के इच्छुक भगवान सूर्य, पश्चिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नहाये हुए से लाल रंग के बादलों में प्रविष्ट हो गये हैं।

चन्द्रोदय का वर्णन भी द्रष्टव्य है –

"ततश्च दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राचीं संक्षाल्य, भस्मितच्छुरितामिव विधाय, चन्दनैरिव संचर्च्य, कुन्द-कुसुमैरिवाऽऽकीर्य गगनसागरमीने इव, मनोज-मनोज्ञ-हंसे

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 77-79
2. शिवराजविजय, पृष्ठ 167

इव, विरहि-निकृन्तन-रौप्यकुन्तप्रान्ते इव, पुण्डरीकाक्ष- पत्नी-कर-पुण्डरीकपत्रे इव शारदाभ्रसारे इव, सप्तसप्ति-सप्ति-पादच्युते राजत खुरत्रे इव, मनोहस्ता-महिला-ललाटे इव, कन्दर्प-कीर्त्तिलताङ्कुरे इव, प्रजा-जन-नयन-कर्पूरखण्डे इव, तमीतिमिर-कर्त्तन-शाणोल्लीढ-निस्त्रिंशे इव च समुदिते चन्द्रखण्डे ।"[1]

– "तदनन्तर पहले प्राची दिशा को मानों दुग्धधाराओं से धोकर, भस्म से लिप्त कर, चन्दन चर्चित-सा कर, कुन्द-कुसुमों से व्याप्त-सा कर, आकाश-समुद्र की मछली के समान, कामदेव के सुन्दर हंस के समान, विरहियों, को वेधने वाले चाँदी के भाले के अग्रभाग लक्ष्मी के हाथ के कमल की पंखुरी के समान, शरत्कालीन मेघों के सारभूत तत्त्व के समान, सूर्य के घोड़े के पैर से गिरी चांदी की नाल़ के समान, सुन्दरतारूपी सुन्दरी के ललाट के सदृश, कामदेव की कीर्त्तिलता के अंकुर के तुल्य, लोगों की आँखों के लिए कपूर के समान और रात्रि के अन्धकार को काटने के लिए सान पर तेज किये गये खड्ग के समान चैत्रमास का बालचन्द्र उदित हो गया ।"

शिवाजी की उचटी हुई नींद के औचित्य-निरूपण-हेतु वातावरण प्रस्तुत करते हुए व्यास जी ने असह्य गर्मी का चित्र इस प्रकार खींचा है –

"निशीथप्राया रजनी, उष्णः कालः, समीरो न सरति, गृहे-गृहे बालानां रोदनस्यार्त्तनादो व्यजन-चालनस्य च सणत्कारो निद्रामन्थरानपि व्याकुलयति । जलं जलं हिमं हिमम्, वातो वातः, दाडिम्बरसः दाडिम्बरसः रसः, उशीरमुशीरम्, पाटलोदकं पाटलोदकम्, चन्द्रनचूर्णं चन्दनचूर्णम् इति : मशकाः मशकाः, मत्कुणाः मत्कुणाः, कण्डूः कण्डूः, स्वेदः स्वेदः इति च श्रूयते अटैभ्यो ध्वनिः ।"[2]

(– मध्यरात्रि का समय था और गर्मी की ऋतु । हवा भी नहीं बह रही थी, घर-घर में बच्चों के क्रन्दन का आर्त्तनाद और पंखे झलने की सनसनाहट नींद से अलसाये लोगों को भी व्याकुल कर रही थी । "अरे, पानी लाओ, पानी, अरे, थोड़ा बर्फ़ भी ले आओ, ज़रा पंखा डुलाओ, अनार का रस चाहिए, खस की टट्टी लाओ, थोड़ा गुलाबजल ही ले आओ, चन्दन का चूरा चाहिए । ओह! बड़े मच्छर हैं, अरे ! खटमल काट रहे हैं । शरीर में खुजली मच रही है – बहुत पसीना निकल रहा है – इसी तरह की आवाज़ छतों से आ रही थी ।)

इसी तरह वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुओं के भी वर्णन प्राप्त होते हैं । अग्नि की प्रचण्डता, आँधी और समुद्री तूफ़ानों के चित्र वातावरण को सजीव कर देते हैं ।

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 137-139.
2. शिवराजविजय, पृष्ठ 695

उद्देश्य

शिवराजविजय की रचना में लेखक का क्या प्रयोजन निहित है, इसकी जिज्ञासा स्वाभाविक है। इस दृष्टि से 'निर्माण हेतुः' शीर्षक से व्यास जी ने जो भूमिका लिखी है, उस पर दृष्टिपात आवश्यक है। उसका यह अंश विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

"काव्यमिदं मा स्म भूत् तादृग् भाव-विघट्टकम्, मा स्म वा पुषत् कस्यापि मोदविशेषम्, परम्मया तु सनातनधर्म – धूर्वह-शिवराजवर्णनेन रसना पावितैव, प्रसङ्गतः सदुपदेश-निर्देशैः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिक काव्यरुचीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्येव, चिरमस्मत्पूर्वजैः पराशरपाराशरादिभिरुपासिता संस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य सविशेषं साक्षात्कृता पीयूषपूरपूर्णैरिव दृक्पातैरुज्जीवयन्ती पारिजातकुसुमवर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव, सद्यः परनिर्वृतिश्च समासादितैव।"

इन पंक्तियों का विश्लेषण करने से, लेखकीय दृष्टि से निम्नलिखित उद्देश्य स्थिर होते हैं :

1. सनातन धर्म-धुरन्धर शिवाजी के पावन चरित्र के वर्णन से अपनी वाणी को पवित्र करना;
2. प्रसंगानुसार सदुपदेश देते हुए अपने ब्राह्मणत्व को सफल करना;
3. ऐतिहासिक काव्य में रुचि रखनेवालों का मनोरंजन करना;
4. संस्कृत भाषा की सेवा करना;
5. भगवती सरस्वती की सम्यक् रीति से आराधना करना;
6. परम आनन्द की प्राप्ति।

लेखक ने शिवाजी को सनातनधर्म का संरक्षक माना है।[1] उन्होंने ऐसे कठिन समय में, जब असहिष्णु शासन-सत्ता धर्म पर पूरे जोर-शोर से प्रहार कर रही थी, उसकी रक्षा की। उनके प्रेरक जीवन को देश की मनीषा के सम्मुख उपस्थापित करना लेखक की दृष्टि में एक पुण्यप्रद कार्य था। प्रकारान्तर से, उसने इस सन्दर्भ में कवि भूषण का अनुसरण किया है, जिनका कथन है – "पुण्य चरित्र सिवा सरजा सरन्हाय पवित्र भई पुनि बानी।"

ब्रह्माजी के मुख से उद्भूत वाणी तब तक सुशोभित रही, जब तक उसमें रामायण और महाभारत सदृश ग्रन्थों की रचना हुई, किन्तु आगे चलकर कलियुग के कवियों ने क्षुद्र राजाओं का यशोगान कर वाणी के गौरव को नष्ट कर दिया।

---

1. शिवराज विजय, – "सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च अयमेवाश्रयः।" पृष्ठ 35

वाणी पुनः तभी अपनी खोई हुई पवित्रता को पा सकी, जब उसने सिंह शिवाजी के पावन चरित्ररूपी मानसरोवर में स्नान किया।

इसी प्रकार का अभिप्राय व्यास जी का प्रतीत होता है।

संस्कृत भाषा में आधुनिक मानदण्डों के अनुरूप एक सर्वथा नवीन ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करना लेखक का दूसरा प्रमुख प्रयोजन है। संस्कृत भाषा की सेवा करने का संकल्प ही इसमें सन्निहित है।

संस्कृत के विद्वान् और साहित्यकार पाण्डित्य-प्रदर्शन की ग्रन्थि से प्रायः ग्रस्त रहे हैं – आजकल के मनोवैज्ञानिक उसे भले ही 'प्रदर्शनवाद' (Exhibitionism) कहें, लेकिन संस्कृतज्ञों के लिए वह उपकारक ही रही है। श्रीहर्ष की एतद्विषयक गर्वोक्तियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। व्यास जी के मन में भी कहीं ऐसे प्रकाण्ड पण्डितों[1] की ओर से, जो कठिन वैयाकरणिक रूपों के प्रयोग और यमक-श्लेष के चमत्कारों को ही लेखकीय उपलब्धि मानते हैं, उपेक्षा की आशंका थी। इसीलिए उनके कानों की खुजली को शान्त करने में भी उन्होंने अपनी कृतकृत्यता मानी है – "सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितुं लिखितः लेखप्रकाण्डः यदि केषाञ्चित् पण्डितप्रकाण्डानां कर्ण-कण्डूं खण्डयेत्, ततः कृतकृत्यः संवर्त्तेय।"

इन सभी में प्रथम दो उद्देश्य ही प्रमुख रूप से **शिवराजविजय** की रचना के मूल में निहित प्रतीत होते हैं।

---

1. ऐसे पण्डितों में से कुछ की ओर उन्होंने ध्यान आकृष्ट भी किया है, "ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धममुं तुण्डमुण्डगण्डकण्डूयनैः, ताण्डव-करण्डीकृत – भ्रूभङ्गैश्चास्मानास्माकांश्च हासयिष्यन्ति ...... ।"
—निर्माण हेतुः, **शिवराजविजय**, पृष्ठ 4

शिवराजविजय : साहित्यिक वैशिष्ट्य

यह कृति साहित्य की दृष्टि से एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। रस-निष्पत्ति, भाव-विभूति, शैली और शिल्प तथा आलङ्कारिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से व्यास जी किसी से भी न्यून नहीं है। उपर्युक्त पक्षों का पृथक्-पृथक् आकलन समीक्ष्य कृति के साहित्यिक सौष्ठव को उद्घाटित करने के लिए आवश्यक है।

रस-निष्पत्ति

संस्कृत के काव्याचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। **शिवराजविजय** का अंगी रस वीर है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार, करुण, रौद्र, भयानक और शान्त रसों की अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर हुई है।

वीररस के "युद्धवीर" तथा "धर्मवीर" संज्ञक प्रभेदों की अधिक व्यंजना दिखलाई देती है। इसके आलम्बन हैं शिवाजी और उनके गौर तथा रघुवीरसिंह सदृश सहायक। शिवाजी की वीरता का कथन उनका शत्रु अफ़जल ख़ाँ तक करता है –

> "अहो वीरता शिववीरस्य, अहो निर्भयता एतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्घोटकानाम्, आः ! किं कथयामः ? दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीरचन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुं गच्छेत्।"[1]

यहाँ वक्तृ और आलम्बन-वैशिष्ट्य से दो भिन्न रसों की प्रतीति एक साथ होती है। वक्तृ-वैशिष्ट्य से भयानक रस की अनुभूति होती है और आलम्बन-दृष्टि से वीर की।

> "धर्म वीरता की सप्राण अभिव्यक्ति शिवाजी के इस कथन से हुई है – "अस्ति च प्राणाः यान्तु, न च धर्मः" इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः। महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वापि वर्षास्वपि, ग्रीष्म-धर्मेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंहसङ्घष्वपि चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि निर्भया विचरन्ति।"[2]

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 81
2. शिवराजविजय, पृष्ठ 68-69

यवनयुवक के साथ हुए संघर्ष में गौरसिंह की युद्धवीरता का यह चित्र भी द्रष्टव्य है –

"ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाणमार्गानङ्गीकृतवतः दिनकर-कर-स्पर्श-चतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः यवन-युवक-हतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलित-क्लेद-संजात-स्वेदजल-जालं विशिथिलकचकुलमालं भूग्नभू-भयानकभालं शिरश्चिच्छेद।"[1]

(– तब गौरसिंह ने, तलवार के दायें-बायें सैकड़ों पैंतरे बदलने वाले, सूर्य की किरणों के सम्पर्क से जिसकी चमक चौगुनी हो रही थी, ऐसी चलती हुई तलवार की चमचमाहट से आँखों को चौंधिया रहे उस दृष्ट यवन के, श्रम करने से निकले हुए पसीने में तर, अस्त-व्यस्त बालों वाले, टेढ़ी भौंहों से भयानक लगने वाले ललाट से युक्त शिर को अकस्मात् ऐसी सफाई से काट डाला कि कोई देख भी नहीं पाया।)

श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति प्रायः रघुवीर और सौवर्णी की प्रणयकथा तथा शिवाजी के प्रति रोशनआरा के आकर्षणपरक प्रसंगों में हुई है। रघुवीर के गुणों के प्रति अनुरक्त और उसे भावी पति मानती हुई सौवर्णी की वियोग-व्यथा निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी मार्मिकता से व्यक्त हुई है –

"यं च प्राणनाथं मन्यमाना मनोरथसन्तानवितानैरात्मानं व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे। आवसथमपि न वेद्मि पात्रेऽयमभिलाषः सुपरिणामोऽयं चित्रबन्ध इत्यपि न जाने। केवलमेनं प्रातिपदिकं चन्द्रमिव, कदाचित् क्षणाय दूरतोऽवलोक्य, चिरदाहदग्धं हृदयहतकं शीतलयामि।"[2]

– (जिसको प्रियतम मानकर कामनाओं के जाल में अपने आपको खिन्न करती हूँ, उसका महीनों से समाचार भी नहीं मिला है। मैं उसका निवास भी नहीं जानती। मैं यह भी नहीं जानती कि मेरी यह अभिलाषा योग्य पुरुष के विषय में है। मन का यह लगाव सुखान्त है या नहीं। केवल उसे प्रतिपदा के चन्द्रमा की भाँति कभी क्षण भर के लिए दूर से देखकर दीर्घकाल के विरह से तप्त अभागे हृदय को शीतल कर लेती हूँ।)

इस प्रसंग में विभिन्न काम-दशाओं[3] की अभिव्यंजना भी हुई है। विप्रलम्भ के प्रसंग में सात्त्विक अनुभावों का यह वर्णन भी अवलोकनीय है –

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 44
2. वही, पृष्ठ 360
3. वही, पृष्ठ 354

"तथापि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च।"

करुण रस की अभिव्यक्ति प्रथम निश्वास में ही, समाधि से उत्थित योगिराज के सम्मुख ब्रह्मचारिगुरु के द्वारा भारत-दुर्दशा के वर्णन में हुई है।

यवन-यति के वेश में, भारत की दुर्दशा पर माल्यश्रीक का यह विलाप भी कारुण्य-व्यंजक है –

"अहह ! ग्रहा एव प्रतिकूलाः, समय एवाशुभमयः भारतवर्षस्य। हा भारत ! किं लुण्ठकैरिव भोक्ष्यसे ? हा वसुन्धरे ! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? प्रजाः अधुना निरर्थं निर्दयं लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते घात्यन्ते, ज्वल्यन्ते च। एवं भावयत एव तस्यान्तर्दुःखमिव जलरूपेणद्रावयन्ती, कपोलं क्षालयन्ती, श्मश्रुवग्राद् बिन्दूभूय कूर्चं सिञ्चन्ती, भूतलमाविलं चकाराश्रुजलधारा।"[1]

(– हाय ! भारत के ग्रह ही प्रतिकूल हैं, अशुभ समय है। अरे भारत ! क्या लुटेरे ही तुम्हारा उपभोग करेंगे ? हा वसुन्धरे ! क्या अपनी दीन-दुःखी प्रजा (सन्तान) के रक्त से ही नहाओगी ? प्रजा आज अकारण निर्दयतापूर्वक लूटी जाती है, मारी जाती है और जलाई जाती है। इस प्रकार की भावना करते हुए ही माल्यश्रीक के आँसुओं की धारा मानो उसके आन्तरिक दुःख को जल के रूप में प्रवाहित करती हुई, उसके कपोलों को धोती हुई, मूँछों के अग्रभाग से बिन्दुरूप में परिणत होकर, उसकी दाढ़ी को भिगोती हुई धरा को सिक्त करने लगी।)

रौद्र, भयानक, बीभत्स और अद्भुत रसों की अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर इस कृति में उत्कृष्ट रूप से हुई है। योगिराज की समाधिजन्य उपलब्धियों का निरूपण करते हुए ब्रह्मचारिगुरु के कथन में शान्त रस की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। सुख-दुःख और आशा-निराशा के द्वन्द्वों को सहन करते हुए व्यक्ति का मन अन्ततः निर्वेद की जिस अवस्था में आ जाता है, उसका निदर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में प्राप्य है –

"तात ! परिवर्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावाः, सुख-दुःखमय एव संसारः, कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम्, कस्य निःशेषं पूर्णा अभिलाषाः ? कस्यापरिचितपश्चात्तापसंघर्ष हृदयम्। तत् पौर्वापर्येणालोच्य धैर्यमेव धारणीयम्।"[2]

इस प्रकार रस-निष्पत्ति की दृष्टि से शिवराजविजय अत्यन्त समर्थ रचना है।

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 268-276
2. वही, पृष्ठ 459

भाव-सौन्दर्य

शिवराजविजय में ऐसे अनेक भावों का भी रम्य निरूपण हुआ है, जिन्हें रस की कोटि में संस्कृत के साहित्याचार्यों ने स्थान दिया है। ऐसे ही भावों में वात्सल्य का विशिष्ट स्थान है। यवन-युवक से संरक्षित कन्या के प्रसंग में इस भाव की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। ऐसी ही कुछ पंक्तियाँ ये हैं :-

"कन्यके ! मा भैषीः, पुत्रि ! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि, तदेव करिष्यामः।"[1]

भक्ति-भावना का भी समावेश देवविषयिणी रति में ही किया जाता है। प्रारम्भ में भगवान सूर्य का अभिनन्दन इसी भावना से ओतप्रोत होकर किया गया है। द्वितीय निश्वास में, तानरंग के द्वारा गाये गये गीतों में भी भक्तिभाव की अभिव्यक्ति हुई है –

"सखि ! हे नन्दतनय आगच्छति।
मन्दं मन्दं मुरलीरणनैः समधिक सुखं प्रयच्छति।"[2]

आगे षष्ठ निश्वास में, माल्यश्रीक के विलाप तथा सप्तम निश्वास में शिवाजी के कथनों में भी भक्ति-भावना प्रकट हुई है।

शैली और शिल्प

'शैली' का तात्पर्य है अभिव्यक्ति की विशिष्ट भंगिमा या प्रकार। 'रीति' इसी का नामान्तर है। साहित्यकार के व्यक्तित्त्व का भी इस 'प्रकार' में कुछ समावेश होता है। संस्कृत में कुछ रीतियाँ, किन्हीं क्षेत्रविशेषों में बड़ी लोकप्रिय हुईं और उसी आधार पर इनका नामकरण सम्पन्न हो गया। सम्प्रेषणीयता के आकर्षणवश लेखक किसी विशिष्ट क्षेत्रीय रीति को अपनाकर भी, उसमें अपने 'निजीपन' का कुछ ऐसा अनुमान मिला देता है कि वस्तु की ग्राह्यता कई गुना बढ़ जाती है। संस्कृत में सामान्यतः तीन रीतियों का विशेष प्रचलन रहा है। ये हैं – वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली।

शिवराजविजय में यथावसर तीनों शैलियों का पात्र, प्रसंग, परिवेश और सम्प्रेष्य विषय-वस्तु के अनुरूप प्रयोग हुआ है, जिसका विवरण इस प्रकार है –

1. वैदर्भी रीति : सरल, सुबोध, प्रसाद गुण समन्वित और माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के कारण लालित्यपूर्ण तथा जटिल समासरहित इस शैली का व्यास जी ने प्रचुर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ प्रथम निश्वास का यह अंश प्रस्तुत है –

1. शिवराजविजय, पृ० 17
2. वही पृष्ठ 95

"अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाश-मण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य ... । अयमेवाहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति। अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम् ।"

2. **गौडी रीति :** यह समासप्रधान, ओजोमयी और महाप्राण तथा घोषवर्णों के आधिक्य से समन्वित होती है। संस्कृत-गद्यकारों की इस रीति में व्यापक रुचि रही है, क्योंकि आलंकारिकों के अनुसार ओज और समास-बाहुल्य ही गद्य के प्राणभूत तत्त्व हैं – "ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम् ।" अपने पूर्ववर्ती गद्यकारों के पथ का पुरोवर्त्तन करते हुए व्यास जी ने भी **शिवराजविजय** में इसे बहुत अपनाया है। तद्विषयक एक अंश यों है –

"यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरतासीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमान दोर्दण्डः ... स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः ... ।"

यहाँ सामासिक संश्लिष्टता के प्रति लेखकीय आग्रह स्वतः मुखर है।

3. **पाञ्चाली रीति :** काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति के अनुसार यह रीति माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त होती है – "माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाञ्चाली ।" एक प्रकार से इसका प्रयोग श्रृंगारादि कोमल रसों की अभिव्यंजना के लिए होता है। नवम निश्वास के आरम्भ का यह अंश 'पाञ्चाली' रीति का समुचित उदाहरण प्रतीत होता है –

"ऋतुरेष शरत्। साम्प्रतं पुण्यनगरप्रान्तेऽकालेऽपि वसन्त इव पुंस्कोकिलाः काकली कलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति। मिलित-मलयानिल-लोला लवङ्गलता दोलन्ति। मधुगन्धान्धमधुव्रत-व्रात-विधुता माकन्द मञ्जर्यो माञ्जुल्यं वमन्ति ।"

गुण और वृत्तियाँ – **शिवराजविजय** में भामहोक्त रीतिविषयक सभी दस गुणों का यथोचित सन्निवेश है। इसकी गद्य-शैली में मिन्टो के द्वारा निरूपित सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, मर्मस्पर्शिता, सुसंगति और श्रुतिमाधुर्य का भी समुचित समावेश है। उसमें सजीवता और लालित्य के साथ ही उल्लास भी है।

भाषा की अन्य विशेषताएँ – जिस युग में, **शिवराजविजय** की रचना हुई, वह संस्कृत के प्रौढ़ पाण्डित्य से अनुप्राणित था। इसलिए स्पष्टता और सुबोधता के आग्रह से युक्त होने पर भी व्यास जी स्वल्प प्रचलित धातु-रूपों और लकारों तथा "मोमुद्यते" सदृश यङ्लुगन्त प्रयोगों से यद्यपि नहीं बच सके हैं, तथापि भाषा के प्रवाह में इससे कोई बाधा नहीं आने पायी है। लाक्षणिकता **शिवराजविजय** की भाषा का विशेष गुण है। उदाहरण के लिए "यावन्नव कवोष्ण शोणित-तृषित एष चन्द्रहासो न चलति" (पृष्ठ 43) को लिया जा सकता है। यहाँ निर्जीव चन्द्रहास चलने का कार्य नहीं कर सकती, इसलिए उपादान लक्षणा से 'चन्द्रहासधारीकर' अर्थ निकलता है।

नाम-धातुओं के प्रयोग भी कहीं-कहीं अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होते हैं – उदाहरण के लिए "खपुष्पायितः, शशंशृङ्गायितः, कमठीस्तन्यायितः" – सदृश प्रयोग देखे जा सकते हैं।

पुनरुक्तियों को बचाने के लिए विपुल शब्द-भण्डार का प्रयोग किया गया है। अनेक नये शब्दों के लिए जिनका आगमन मुस्लिम-संस्कृति के सम्पर्क से भारतीय भाषाओं में हुआ, व्यास जी ने नये शब्दों का निर्माण किया है, यथा अरुणश्मश्रु (मेंहदी से रँगी लाल दाढ़ी), निष्ठ्यूतादान (पीकदान), उपनेत्र (चश्मा), काचमंजूषा (लालटेन), मत्रिका (चिलम), तोभ (तोप), इत्यादि। अनेक व्यक्तियों और स्थानों के संस्कृत-रूपान्तर दिये गये हैं। ऐसे कुछ नामों की चर्चा चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत की जा चुकी है। अन्य रूपान्तरों में से कतिपय ये हैं –

स्थान–विजयपुर (बीजापुर), चिक्कन दुर्ग (चाकनगढ़) मर्क (मक्का), मेदः पाट (मेवाड़), अहोमदननगर (अहमदनगर),

अन्य–कवित्वकाम (कवित्त), रामयान (रमजान), पाटीन (पठान), इत्यादि।

लोकोक्तियों, आभाणकों और शब्दबन्धों (मुहावरे) से भाषा को शक्ति और रोचकता प्राप्त होती है। व्यास जी ने इनका प्रचुर प्रयोग **शिवराजविजय** में किया है। कतिपय उदाहरण ये हैं –

(1) चक्षुषु रेणुकाराशिमाहितवानसि – आँखों में धूल झोंक दी है।
(2) घृतेन स्नातु भवद्रसना – आपके मुँह में घी (शक्कर)।
(3) तत्सुप्रभातमद्य – आज की सुबह वहुत शुभ है।
(4) त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गायितोऽसि – तू स्वयं ही धधकती दावाग्नि में पतंगे की तरह जलने आ गये हो।
(5) को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुं गच्छेत् – किसके दो शिर हैं, जो शिवाजी से लड़ने जाये।

शिवराजविजय की भाषा में कहीं-कहीं उत्कृष्ट चित्रात्मकता है। विभिन्न व्यक्तियों, घटनाओं, स्थानों एवं प्रसंगों के बहुत सजीव चित्र व्यास जी ने उपस्थित किये हैं। चाहे अफ़ज़ल ख़ाँ के शिविर का दृश्य हो या भीमा नदी का – सर्वथा हृदयग्राह्य शब्दचित्र अंकित हैं **शिवराजविजय** में। भीमा नदी के वर्णन से नेत्रों के सम्मुख लहराती, हहराती, प्रस्तरखण्डों से टकराती और बलखाती हुई चंचल धाराओं वाली पर्वतीय प्रस्रविणी का बिम्ब सहज ही उपस्थित हो जाता है। अफ़ज़ल ख़ां के सैन्य-शिविर को जलाकर खाक कर देने वाली प्रचण्ड अग्नि-ज्वालाओं का वर्णन भी रोमांचक है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक उपन्यास की भाषा में जो शक्ति, प्रवाह और स्वाभाविकता होनी चाहिए, वह **शिवराजविजय** की भाषा में है।

अलंकार-सुषमा

व्यास जी के सम्मुख यद्यपि साहित्यिक संस्कृत-गद्य का अलंकृत रूप ही निदर्शन-हेतु उपलब्ध था, तथापि वह उपन्यास में अलंकारों के अधिक सन्निवेश के

समर्थक न थे। गद्य-काव्य-मीमांसा में उन्होंने अपनी इस धारणा का उल्लेख भी किया है–

"उत्साहोच्छेदकं यच्च कथादौर्बल्यकारकम्।
बाहुल्यं रूपकोत्प्रेक्षादीनां न गुणिनाम्मतम्।।"

अभिप्राय यह कि कथा-प्रभाव को दुर्बल करनेवाले और पाठकों के उत्साह को विच्छिन्न करने वाले रूपक और उत्प्रेक्षादि अलंकारों का उपन्यास में अधिक प्रयोग नहीं होना चाहिए। इसीलिए शिवराजविजय में, अलंकारों का उतना ही प्रयोग व्यास जी को इष्ट है, जितने से वह गद्य-काव्य के सहज और नैसर्गिक प्रवाह को अवरुद्ध न कर सके। यही कारण है कि अलंकारों का प्रयोग शिवराजविजय में रस और वातावरण के अनुरूप ही है।

आलंकारिक प्रयोगों के कतिपय चारुत्वपूर्ण स्थल इस प्रकार हैं –

अनुप्रास – वर्णों की समानता पर आधृत इस अलंकार से भाषा में पद-लालित्य की वृद्धि होती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(क) शोक-विमोकः कोक-लोकस्य।
(ख) चर्कर्ति, बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्।
(ग) कुतू-कुतुप-कर्करी-कण्डोल-कटकटाहकम्बि कडम्बान्।
(घ) पूर्वतः परम - पवित्र - पानीय - परस्सहस्र - पुण्डरीक - पटल - परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित-पूजितं पयः पूरितं सर आसीत्।
(ङ) उत्तरोत्तरतस्तार-तार-तरेरुतैरतार्त्तिमीरयन्त्यपि तरुण तित्तिरी न तरोरवतरति।
(च) आलोकाऽऽलोक-कृत-किञ्चच्छोकमोकोऽपि च कोको न वराकीं कोकीमुपसर्पति।

उपमा – शिवराजविजय में औपम्यगर्भ अलङ्कारों की बहुत मोहक छवियाँ हैं। उपमानों के चयन में व्यास जी ने बड़ी उदारता अपनाई है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और परिवेश से अप्रस्तुत लिये गए हैं। मृणाल, कुन्द, कोरक और नवनीत आदि प्राकृतिक तथा रम्य उपमानों के साथ लेखक ने कहीं-कहीं पात्रानुकूल उपमान भी प्रस्तुत किए हैं। गौरसिंह ने अफ़जल ख़ां के समक्ष शिवाजी की प्रशंसा करने के अनन्तर इतना और जोड़ दिया – "किन्तु आज शिवाजी का सामना सिंह से है, यदि शिव ही शिवाजी की रक्षा न करें तो बीजापुर की विजय निश्चित है।" इस पर अफ़जल ख़ां बोला–

"को नाम खपुष्पायितः शशशङ्गायितः, कमठीस्तन्यायितः, सरीसृप – श्रवणायितः, भेकरसनायितः, वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति।"

– भला आकाश-कुसुम-सा, खरगोश के सींग-सा, कछुई के दूध-सा, साँप के कान-सा, मेढक की जीभ-सा और वन्ध्या के पुत्र-सा शिव भी कोई चीज़ है!)

यद्यपि शिवाजी के विषय में, आज हमें ये उक्तियाँ अनुचित प्रतीत होती हैं, किन्तु अफ़जल ख़ाँ का कथन होने से अस्वाभाविक नहीं हैं। खरगोश के सींग, कछुई

का दूध, साँप के कान और मेंढक की जीभ – इन उपमानों का प्रयोग अफ़जल ख़ां जैसा बौद्धिक दृष्टि से बौना व्यक्ति ही कर सकता था।

रुदन करती हुई सप्तवर्षीया विप्रतनया के लिए प्रयुक्त उपमानों का मार्दव और सौन्दर्य भी कमनीय है –

–"तां चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणालगौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम्, रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयन बाष्पाणि।"

उत्प्रेक्षा – समाचार कहने से पूर्व वातावरण को प्रस्तुत करते हुए ब्रह्मचारिगुरु का कथन है –

"समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंग-कुलेषु.... ।"

– निशानायिका के चन्दन-बिन्दु के समान चन्द्रमण्डल उदित हो चुका था, आकाश चाँदनी के व्याज से मानो अमृत बरसा रहा था, पक्षिगण मानो हम लोगों की नीति-चर्चा सुनने की इच्छा से मौन धारण किये थे।

चन्द्रोदय के सन्दर्भ में, उपर्युक्त अंश में बहुविध सम्भावनाएँ प्रकट की गई हैं।

विरोधाभास – सुबन्धु और बाण के श्लिष्ट और अश्लिष्ट विरोधाभास बहुत प्रसिद्ध हैं। व्यास जी के विरोधाभास भी उसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। शिवाजी के स्वरूप का यह विरोधाभास द्रष्टव्य है –

"खर्वामप्यखर्वपराक्रमां श्यामामपि यशः समूह श्वेतीकृतत्रिभुवनां कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयां पठन-पाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णातां स्थूल-दर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनां ध्वंसकाण्डंयसनिनीमपि धर्म-धौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां शोभितविग्रहामपि दृढ़सन्धिबन्धां कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्... ।"

– देखने में ठिगनी होने पर भी महापराक्रमशालिनी, साँवली होते हुए भी तीनों लोकों को अपनी कीर्त्ति से धवलित करने वाली, कुश के आसन पर समासीन होने पर भी उत्तम शासन की आश्रयभूत, पठन-पाठन के परिश्रम से अपरिचित होने पर भी राजनीति में निष्णात, देखने में स्थूल होने पर भी सूक्ष्मदृष्टिवाली, (विधर्मियों की) हिंसा की व्यसनवाली होने पर भी धर्म का भार धारण करनेवाली, कठिन होती हुई भी कोमल, सुन्दर विग्रह (लड़ाई, शरीर) वाली होती हुई भी सुदृढ़ सन्धिबन्धों वाली, गौरवशालिनी होने पर भी चातुर्यसम्पन्न (शिवाजी की मूर्ति को देखा)।

यहाँ खर्व-अखर्व, श्याम-श्वेत, कुशासनाश्रय-सुशासनाश्रय प्रभृति में आपाततः विरोध दिखलाई देता है, किन्तु वास्तव में कोई विरोध नहीं है।

उल्लेख – प्रथम निश्वास में योगिराज का यह वर्णन द्रष्टव्य है –

"महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म।" इसमें एक योगिराज का कपिल, लोमश, जैगीसव्यादि अनेक रूपों में उल्लेख है।

प्रतीप – उपमेय की अधिक प्रतिष्ठा करते हुए उपमान का जब तिरस्कार कर दिया जाता है, वहाँ 'प्रतीप' अलंकार होता है। सौवर्णी के रूप-वर्णन में प्रतीप का अच्छा प्रयोग हुआ है –

"सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुँस्कोकिलान्, केशैः रोलम्वकदम्बानि, ललाटेन कलाधर-कलाम्, लोचनाभ्यां खञ्जनान्, अधरेण वन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वतां मन्द-मन्दं, मुग्ध-मुग्धं मधुर मधुरं किञ्चिद् गायति।"

सहोक्ति – जब किसी वस्तु का सहभाव जनरंजक हो, तो सहोक्ति होती है। ब्रह्मचारि-गुरु योगिराज को देश-दुर्दशा के कारणों से अवगत करा रहे हैं –

"भगवन्! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौरव्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव सनाथितवति।"

यहाँ विक्रमादित्य का धैर्यादि गुणों के साथ सहभाव सहृदयों के लिए आह्लादक है।

प्रेरणा और परिपाक

अपनी पूर्ववर्तिनी परम्पराओं, वाङ्मय-विभूतियों और लोकशास्त्रादि से प्रेरित तथा प्रभावित होना किसी भी साहित्यिक के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। व्यास जी भी इसके अपवाद नहीं हो सकते। कुछ आलोचकों ने उन्हें बाण के भाव-सम्भार, रस-निर्वाह तथा कथासूत्र का ऋणी माना है। कादम्बरी की दो प्रेमियों और दो प्रेमिकाओं की कथा के आधार पर, उनका कथन है, व्यास जी ने भी दो समानान्तर प्रणय-कथाओं की योजना की है।[1]

किन्तु यह स्थिति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष यह है कि शिवराजविजय समस्त संस्कृत-गद्य काव्यों में एक पूर्णतया नवीन वस्तु है। इसकी शैली और शिल्प में जहाँ सुबन्धु का सौष्ठव, दण्डी का पद-लालित्य और बाण का निरन्तर-श्लेष-सघन-सुजातिसौन्दर्य समाविष्ट है, वहीं इन सभी के परिपाक से संश्लिष्ट और जीवन्त कथा-प्रवाह के निर्वाह के अनुरूप एक नई गद्य-शैली को जन्म भी मिला है। कथा की दृष्टि से दण्डी में जहाँ साहसिकता, रोचकता और गुप्तचर्या है, बाण में प्रेम की प्रकृष्ट तथा उदात्त व्यंजना है, वहीं शिवराजविजय में साहस, शौर्य, समझ, शृंगार और प्रेम का अद्भुत समन्वय है। यहाँ अन्याय, अत्याचार और अशिव के विरुद्ध संघर्ष का साहस है, सद्भाव और सदाचार के प्रति निष्ठा का आग्रह है, मानव-मूल्यों के प्रति समर्पित स्वामी के निमित्त सुदृढ़ स्वामिभक्ति का भाव है, नैतिकता के प्रतिमानों के पालन का अनुरोध है और निश्छल तथा निर्व्याज प्रेम से आप्लावित प्रणयि-हृदयों का स्पन्दन है।

तात्पर्य यह है कि व्यास जी ने अपने पूर्ववर्तियों से प्राप्त संस्कार को प्रतिभा, श्रम एवं व्युत्पत्ति के अमृत-कलश से सींचकर संस्कृत-गद्यकाव्य का एक नया क्षितिज उद्घाटित किया है, जो पुरातन होते हुए भी नूतन है।

---

1. बाणभट्ट का आदान-प्रादान, डॉ. अमरनाथ पाण्डेय, पृ० 95

आस्था, आदर्श और जीवन-दर्शन

शिवराजविजय का महत्त्व केवल साहित्यशास्त्रीय मानकों की दृष्टि से ही नहीं है। इसमें महनीय मानव-मूल्यों, दुर्लभ आस्थाओं, प्रेरक आदर्शों एवं स्वस्थ और आशावादी जीवन-दर्शन को भी अभिव्यक्ति मिली है।

स्वतन्त्रता का सन्देश

भारतेन्दु का युग, भारतीय साहित्य में नवजागरण का काल है। संस्कृत के लेखक ने भी उस युग में आगे बढ़कर युग-जागरण की प्रभाती गाई है। छत्रपति शिवाजी के पावन चरित्र के माध्यम से भारत की स्वतन्त्रता का ही उसने सन्देश दिया है। शिवराजविजय के सप्तम निश्वास में, शिवाजी का कथन है –

"कमालम्बिष्यते भारताभिजनस्वातन्त्र्यभारः।"[1]

– भारतवासियों की स्वतन्त्रता का भार कौन सँभालेगा ?

इससे पूर्व षष्ठ निश्वास में, स्वतन्त्रता को पैतृक परम्परा से प्राप्त, प्राणों से भी अधिक मूल्य वाली, सर्वस्व खोकर भी रक्षा करने योग्य, धर्म-अर्थ तथा काम की मूलाधार सम्पत्ति बतलाया गया है –

"पारम्परीणां प्राणाधिकमूल्यां सर्वस्वहानेनापि रक्षणीयां धर्मार्थकाममूलभूतां स्वतन्त्रतासम्पत्तिम् ...।"[2]

अन्य अनेक स्थलों पर भी स्वतन्त्रता के प्रति प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से ललक उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है।

मुस्लिमों के प्रति सद्व्यवहार की भावना – रोशनआरा और शिवाजी के वार्तालाप से विदित होता है कि शिवाजी यद्यपि मुग़ल-शासन के विरुद्ध लड़ रहे थे, लेकिन उनके राज्य में सामान्य मुस्लिम-जनसमूह के साथ पूरा-पूरा सद्व्यवहार होता था। मुस्लिम प्रजा भी शिवाजी से प्रसन्न थी, जैसा कि रोशनआरा और शिवाजी के निम्नलिखित वार्तालाप से स्पष्ट है–

"रोशनआरा – तत् किं शिवराज्ये यवना अपि मोदन्ते ?

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 386
2. वही, पृष्ठ 297

शिवराजः – सर्वासां प्रजानां समान एवं मोदः। न भवति शासनकाले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम्।"[1]

शासकीय व्यवहार में किसी भी जाति और धर्म का उल्लेख नहीं होता था।

स्त्रियों के प्रति सद्व्यवहार की भावना – शिवराजविजय में उल्लेख है कि शिवाजी के राज्य में, स्त्रियों को, वे शत्रु से ही सम्बद्ध क्यों न हों, सदैव समुचित सम्मान दिया जाता था –

"यत्र परिपन्थिनामपि युवजनमनोमोहनेनातिधुरेण कौमारात् परेण वयसाऽऽलिङ्गिता अपि सौन्दर्यसारविरचिता इवापि दुहितर सम्मान्यन्ते न तु अवहेल्यन्ते।"

स्वामी के प्रति निष्ठा का आदर्श

तोरणदुर्ग के दौवारिक के माध्यम से व्यास जी ने स्वामिभक्ति की भावना पर बल दिया है। चरित्र-चित्रण के प्रसंग में इसका विस्तार से उल्लेख हो चुका है – इसलिए यहाँ उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

युद्ध के विरुद्ध विचार – शिवराजविजय में यद्यपि अधिकांशतः युद्धों का ही वातावरण है, तथापि व्यास जी ने युद्ध को अच्छा नहीं माना है। युद्ध के कारण व्याप्त रुग्णता, दरिद्रता, मँहगाई और दुर्भिक्ष के विषय में उन्होंने राजा जयसिंह के माध्यम से नवम् निश्वास में विचार व्यक्त किये हैं –

"यत्र च चिरं युद्धानि भवन्ति, तत्रैव प्रायशो रोगा आपतन्ति, तत्रैव दरिद्रता पदमादधाति, तत्रैव च क्रमशः सर्वं महार्घताभाप्नुवद् भयानकं दुर्भिक्षं जनयति – इति चिरयुद्धहतोत्साहाः प्रजा भटाश्च हतोत्साहाः भवन्ति।"

युद्ध के विरुद्ध विश्व-जनमत बीसवीं शती के दो महायुद्धों में हुए विनाश को देखकर बना। इस दृष्टि से व्यास जी दूरदर्शी माने जायेंगे, जिन्होंने बहुत पहले ही युद्ध के विषय में प्रतिकूल विचार प्रकट किये। आज उनके तद्विषयक विचार अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

जीवन की सुख-दुःखमयता – मानव-जीवन सुख के साथ ही दुःख से भी जुड़ा है। संसार परिवर्तनशील है। किसी को भी न अकेले दुःख मिलता है और न केवल सुख–

"सुखदुःखमय एवं च संसारः। कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम्। कस्य निःशेषं पूर्णाः अभिलाषाः।"

व्यास जी का मन्तव्य है कि जीवन को उसकी वास्तविकता में ही स्वीकार करना चाहिए।

---

1. शिवराजविजय, पृष्ठ 423

नियतिवादिता – जीवन एक सुनियत व्यापार है, होनी होकर ही रहती है – इस पर विश्वास करनेवाले व्यास जी कहीं-कहीं नियतिवादी भी प्रतीत होते हैं

"अवितर्कणीया दैवघटना। अवश्यम्भाविनो भावाः।"

निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि **शिवराजविजय** के माध्यम से व्यास जी ने एक सोये हुए राष्ट्र को जगाने का गम्भीर प्रयत्न किया है। इस कृति ने व्यष्टि और समष्टि दोनों के ही पतनोन्मुख जीवन में एक उदात्त और प्रेरक व्यक्तित्त्व को प्रतीक रूप में उपस्थित कर नई जिजीविषा का संचार करने की चेष्टा की है।

केवल – "टिड्ढाणञ्०" सदृश कुछ व्याकरण-सूत्रों को रटकर अपने को कृतकृत्य समझनेवाले संस्कृत-पण्डितों से भी लेखक क्षुब्ध दिखाई देता है। महादेवपण्डित के प्रसंग में यह क्षोभ इस प्रकार व्यक्त हुआ है –

"परं महादेवस्तु न 'टिड्ढाणञ्' पण्डितः, किन्तु युद्ध-पण्डितः, (षष्ठ निश्वास)।"

इस पंक्ति के माध्यम से व्यासजी ने संस्कृत-पण्डितों को युगीन चुनौतियों से जूझने के लिए आमंत्रित किया है। सर्वाङ्गीण जीवन केवल व्याकरण-अभ्यास तक ही सीमित नहीं रह सकता।

इस प्रकार **शिवराजविजय** ने केवल संस्कृत के गद्य-साहित्य में ही नहीं, सम्पूर्ण वाङ्मय में युगान्तर उपस्थित किया है। यह अपने युग की नयी चेतना और नयीं धारा की प्रतिनिधि रचना है। ऐसी कृतियों को देखकर ही यह लगता है कि कला काल को क़ैद कर सकती है और मृत्यु की सम्भावनाओं से जूझते हुए उन्हें समाप्त कर सकती है।

शिवराजविजय के रूप में संस्कृत का कृतित्व सामयिक मूल्यों और युगानुरूप भावबोध को आत्मसात् कर समय के निकष पर खरा उतरा है।[1]

---

1. "Art arrests the time and kills the death." – Croce

व्यास जी के संस्कृत रूपक

सामवतम् के उपोद्‌घात से विदित होता है कि व्यास जी ने संस्कृत में तीन रूपकों की रचना की। ये हैं – 'धर्माधर्मकलकम्', 'मित्रालापः' और सामवतम्।

प्रथम दो मन की उमंग शीर्षक संग्रह में संकलित हैं। संग्रह की भूमिका से ज्ञात होता है कि मुजफ्फरपुर की धर्मसभा में इनका अभिनय भी हुआ था। सामवतम् की रचना मिथिला के तत्कालीन राजा लक्ष्मीश्वर सिंह की प्रेरणा से हुई थी।

'धर्माधर्मकलकम्' और 'मित्रालापः'

ये संवादात्मक कृतियाँ हैं, जिनमें कुछ पद्य भी हैं। इनमें कोई कथानक नहीं है। धार्मिक और सामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति अवश्य है। जिन विचारों को इनमें स्थान मिला है, तदनुसार गंगा-स्नान और तीर्थ-सेवन से अधर्म नष्ट होता है। अधर्म की वृद्धि वेश्या-गमन, परस्त्रीसेवन और मद्यादि के ग्रहण से होती है। कलि भगवन्नाम से दूर भागता है। वस्तुतः इस रूपक का प्रयोजन सनातनी मान्यताओं का प्रचार है। अधर्म के आचरण से पुरुष-परमेश्वर भी शूकर रूप में पहुँच जाता है–

"येन शूकरतां नीतः पुरुषः परमेश्वरः।
अधर्म मर्मभेत्तारं तमेनं वेत्ति नैव कः।।
– (धर्माधर्मकलकलम्, 13)

इसी प्रकार की धारणाएँ 'मित्रालापः' में भी हैं। इसमें भी नाटक की बाह्यविधानसम्बन्धी अपेक्षाओं की परिपूर्ति नहीं हुई है।

सामवतम् – यह छह अंकों का नाटक है। इसकी मूल कथा-वस्तु यौन परिवर्तन पर आधृत है। सामवान् को लक्षित करके निबद्ध कथानक के आधार पर इसका नामकरण हुआ है –

"सामवन्तम् अधिकृत्य कृतं नाटकम्"।

कथावस्तु

नाटक की प्रस्तावना में मिथिला प्रदेश और वहाँ के राजा का विशद वृत्त देने के अनन्तर कवि-परिचय दिया गया है।

सुमेधा और सामवान् नामक दो स्नातकों को अपने पिता वेदमित्र और सारस्वत की आज्ञा से विवाह के निमित्त, विदर्भराज से धन प्राप्त करना है। वन्य शोभा का अवलोकन करते हुए इन दोनों का ऋषियों के आश्रम के समीप माधवी लताकुंज में संगीत सुनाई पड़ा। वहाँ स्वर्ग से समागत मदालसा नाम्नी अप्सरा गा रही थी। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर दोनों माधवीलता से अन्तर्हित रूप में संगीत का आनन्द लेने लगे। समीपस्थ आश्रम में स्थित ऋषि दुर्वासा अपने मित्र के पुत्र सामवान् को बुलाते हैं, लेकिन वह संगीत में खोये होने के कारण उनकी पुकार को सुन नहीं पाता। दुर्वासा ने निकट आकर सामवान् से कहा – "तुम मेरे मित्र सारस्वत के पुत्र होने के कारण सत्कार योग्य थे, किन्तु अनसुनी करने के कारण अब तुम शाप-योग्य हो गये हो – तुमने क्योंकि स्त्री का अवलोकन करने के कारण मेरी अवमानना की है, इसलिए शीघ्र ही स्त्री-रूप वाले हो जाओगे"–

स्त्रियं विलोकयन् तत् त्वं मामवज्ञातवानसि।
स्त्रीरूपमचिरादेव तस्मात् त्वं कलयिष्यसि।।[1]

सामवान् को सौन्दर्य-दर्शन में निमग्न होने के कारण इस शाप का ज्ञान नहीं हो सका। सामवान् और सुमेधा जब राजसभा में पहुँचे, तो वहाँ नृत्य-संगीत का वातावरण था। अर्धरात्रि तक सभी कलावती का नृत्य देखते रहे।

वार्षिक योगिनी-पूजा-महोत्सव में नृत्य-संगीत के समय सुमेधा और सामवान् को राजा से मिलना था। राजसभा में पहुँचकर सुमेधा और सामवान् ने राजा की प्रशंसा करके उन्हें पुष्प अर्पित किये। स्त्रीरूपधारी नर्तक का नृत्य होने पर विदूषक वसन्तक ने सामवान् को चिढ़ाते हुए कहा – "अरे, तुम भी स्त्रीरूपधारी हो – अंगों में वही मनोहरता और चेष्टाओं में माधुर्य है।"

मुनि-पुत्रों से चिढ़े हुए विदूषक वसन्तक के परामर्श पर राजा ने भी आदेश दे दिया कि उनके मित्र महाराज चित्राङ्गद की रानी सीमन्तिनी द्वारा सोमवार को दिये जानेवाले दान के समय सुमेधा पति और सामवान् उसकी पत्नी बनकर जायें, पारितोषिक प्राप्त करें तथा अपने आश्रम में लौट जायें। निरुपाय दोनों ऋषि-पुत्र राजाज्ञा मानने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

राजा के दुष्कृत्यों के कारण विदर्भराज्य में नानाविध उपद्रव होने लगे। एक ब्रह्मचारी ने आकर बतलाया कि चित्राङ्गद की पत्नी सीमन्तिनी ने स्त्रीवेशधारण किये हुए सामवान् की दुर्गारूप में पूजा की, जिससे वह वास्तव में स्त्री बन गया। दोनों ऋषि-पुत्र रानी से धन पाकर जंगल-मार्ग से अपने आश्रम लौटने लगे। मार्ग में, एकान्त देखकर, सामवान् सुमेधा की प्रेयसी भाँति आचरण करने लगा। सामवती के रूप में सामवान् ने काम से पीड़ित होकर सुमेधा से प्रणय-याचना की। उसकी प्रवृत्तियों को

---

1. सामवतम्, 1-64

देखकर सुमेधा को आश्चर्य हुआ – "कथमयं मम प्रिय सखा सामवान् साधारण सुन्दरीव भाषते।"

सामवती ने सुमेधा से आग्रह किया "मुझे युवती समझिए – मां तरुणीमेवहि।"

लताकुंज में ले जाकर सामवती ने सुमेधा को अपने अंग दिखलाये। सुमेधा ने किसी प्रकार सामवती (सामवान्) को समझाया। वे आश्रम पहुँचे।

इधर स्वप्न में सारस्वत ने अपने पुत्र के स्त्री होने की घटना देखी थी। किसी ब्रह्मचारी से इसकी पुष्टि होने पर सारस्वत और वेदमित्र दोनों ऋषि विदर्भराज को दण्डित करने का संकल्प करते हैं।

रात्रि में देखे दुःस्वप्नों से व्याकुल राजा को पुरोहित ने बतलाया कि ये सभी सामवान्-प्रकरण से उत्पन्न विपत्तियाँ हैं। राजा को सेनापति का पत्र मिला कि सेना कष्ट में पड़ी है। अमात्य के पत्र से ज्ञात हुआ कि डाकुओं ने उसकी सेना को लूट लिया है। क्रुद्ध सारस्वत ऋषि भी प्रेतों और पिशाचों की सेना के साथ राजा को विनष्ट करने के लिए आ पहुँचे। राजा उनके चरणों पर गिर पड़ा। सारस्वत ने राजा की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया कि वह सामवती को पुनः पुरुष के रूप में परिवर्तित करने के लिए जगदम्बा की समाराधना करेगा। राजा की भक्ति से देवी प्रकट हुईं किन्तु उन्होंने सामवती को पुनः पुरुष बनाना स्वीकार नहीं किया – सारस्वत को एक पुत्र और होने का वरदान देने के साथ ही सामवती का विवाह सुमेधा से करने के लिए आदेश दिया। सामवती के विवाह के लिए राजा ने सारस्वत को धन दिया। अन्तिम अंक में सामवती के लिए सुमेधा की व्याकुलता का विवरण है। सुमेधा का कथन है –

"सामवति, मदर्थमियं वेदना ते। आः कथमद्यापि न भिद्यते मम वज्रहृदयम्।"

आश्रम में आकर सारस्वत, सामवती का सुमेधा से विवाह कर देते हैं।

कथानक का मूल स्रोत – सामवतम् की कथावस्तु मूलतः स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड के सोमव्रत-प्रकरण से गृहीत है, जिसका उल्लेख स्वयं व्यास जी ने किया है–

> "स्कन्दपुराणीयब्रह्मोत्तरखण्डे सोमव्रतप्रकरणे सीमन्तिन्या पार्वतीधिया पूजितः पुरुषोऽपि सामवांस्तद्महिम्ना स्त्रीत्वं लेभे इति संक्षिप्ताऽस्त्याख्यायिका। सैव समूलेति पवित्रेति मनोहरेति अद्भुतेति शिक्षा-भिक्षाप्रदायिनीति भक्ति-पर्यवसायिनीति च मया तामेवाश्रित्य बहूनि सहायकानि रसोज्जृम्भकाणि कौतुकोत्पादकानि कार्यनिर्वहणक्षमाणि बिन्दु-प्रकरी-पंताकास्थानकादिसंघटकानि पात्राणि प्रकल्प्य विषयमनुमङ्कषटके विभज्यनाटकमिदं घटितम्।"

मूल कथावस्तु में, नाटककार ने, यत्र-तत्र रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए सामान्य परिवर्तन किये हैं। जिन नये पात्रों की कल्पना की गई है, वे ये हैं – बन्धुजीव, कलि, दुर्वासा, जटिल (बधिर ब्राह्मण), राजभट, अमात्य, वसन्तक (विदूषक), राजपुरोहित

देवशर्मा, सीमन्तिनी के पुरोहित एवं प्रधानरक्षक भूत-प्रेत एवं पिशाच, भिक्षु, ब्रह्मचारी, धीवर, प्रतिहार, मदालसा, इन्दुवदना, नर्तकी, मालतिका और मधुरवचना। कहीं-कहीं पौराणिक पात्रों के व्यक्तित्त्व में भी, परिस्थितियों के अनुरूप नवीन परिवर्तन किये गये हैं। दुर्वासा के शाप की कल्पना संभवतः कालिदास के **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** से प्रेरणा लेकर की गयी है। **रत्नावली** (नाटिका) का भी इस पर विपुल प्रभाव प्रतीत होता है। **रत्नावली** में उदयन को अपने प्रति सागरिका के आकर्षण की प्रतीति सारिका द्वारा होती है। **सामवतम्** के षष्ठ अंक में भी, नायिका की विरह-वेदना का ज्ञान नायक सुमेधा को सारिका के द्वारा होता है। होलिका-क्रीड़ा का दृश्य भी रत्नावली के ही आधार पर चित्रित लगता है।

सामवतम् : नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

संस्कृत के नाट्याचार्यों ने नाटक के नायक के रूप में राजा को मान्यता दी है –"प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यों वा यत्र नायकः।"[1] इसे गुणवान्, धीरोदात्त, प्रतापी और कीर्त्तिकामी होना चाहिए। इस परम्परा के विपरीत, **सामवतम्** नाटक का नायक ऋषिपुत्र ब्राह्मण है।

सभी अर्थ-प्रकृतियाँ – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य की इसमें योजना है। सुमेधा का सामवती को पत्नी रूप में प्राप्त कर लेना ही नाटक की उपलब्धि है। प्रारम्भ में, सारस्वत और बन्धुजीव के कथनों से इसके बीज का वपन हो गया है। दुर्वासा द्वारा सामवान् को स्त्रीरूप में परिणत हो जाने का शाप दिया जाना कथावस्तु का बिन्दु है। द्वितीय अंक से लेकर पञ्चम अंक तक विदर्भराज की कथा पताका के रूप में ग्राह्य है, क्योंकि इसी के द्वारा सामवान् को स्त्रीभाव की प्राप्ति होती है और सुमेधा के साथ उसके विवाह की सम्भावना प्रशस्त होती है। 'प्रकरी' की श्रेणी में वे प्रासंगिक कथाएँ आती हैं, जो मुख्य कथावस्तु के एक प्रदेश में स्थित रहकर उसे उपकृत करती हैं। कलि-वृत्त, अप्सरा-गान, दुर्वासा का आविर्भाव, होली-क्रीड़ा प्रभृति इसी कोटि में हैं। नाटक के अन्त में सुमेधा और सामवती का मिलन 'कार्य' है। इसी के साथ ही आरम्भ, यत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम रूप पाँचों कार्यावस्थाएँ भी कथानक में घटित हो जाती हैं।

प्रथम अंक में, सारस्वत और वेदमित्र अपने पुत्रों के विवाह के लिए आकांक्षी हैं – यही आरम्भावस्था है। विवाह-हेतु सामवान् और सुमेधा का विदर्भराज के पास जाकर उनसे धन की याचना करना 'यत्न' की कोटि में है। चतुर्थ अंक की घटनाएँ 'प्राप्त्याशा' को प्रशस्त करती हैं। इनमें सामवती के रूप में सामवान् का परिवर्तित होना, सामवती की सुमेधा से प्रणय-याचना, सुमेधा की आंशिक सहमति और विघ्नों

---

1. दशरूपकम् 3.23

की संभावना सम्मिलित हैं। पञ्चम अंक 'नियताप्ति' की आश्वस्ति देता है। भगवती अम्बिका का सामवती को पुनः पुरुष रूप में परिणित करने से अस्वीकार कर उसका विवाह सुमेधा से करने का आदेश देना, सारस्वत का इस स्थिति को स्वीकार कर लेना तथा विदर्भराज की विवाह में सहयोग की प्रतिश्रुति फल-प्राप्ति को निश्चित कर देती है। षष्ठ अंक में, सामवती और सुमेधा का विवाह ही 'फलागम' है।

अंक का विभाजन दृश्यों में पटीक्षेप के द्वारा किया गया है। उपोद्घात में व्यास जी ने इस विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, तदनुसार अंकारम्भ से पहले रंगपीठ के सबसे आगे स्थित यवनिका (पर्दे) को फैला दिया जाता है और अंक के अन्त में गिरा दिया जाता है। इसके पीछे 'पटी' या 'चित्रपटीसंज्ञक' दूसरा पर्दा होता है, जिस पर अभिनेय विषय के अनुरूप गिरि, वन, नगर, सागर आदि चित्रित होते हैं।

इन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि व्यास जी स्वयं व्यक्तिगत रूप से, रंगकर्म से भली-भाँति परिचित थे।

विष्कम्भक में केवल सूच्य ही नहीं, दृश्य-योजना भी है, जो इस नाटक की विशेषता है। पंचम अंक से पहले के विष्कम्भक में नौका-विहार करना, झंझावात से नौका की रक्षा करना, नौका का निमज्जित हो जाना, मूर्च्छित अमात्य को ब्रह्मचारी के द्वारा सचेत करना है। यहाँ विष्कम्भक में पटीक्षेप के द्वारा दो दृश्य कर दिये गये हैं। इस प्रकार विष्कम्भक प्रायः लघु अंक ही हो गया है।

रंगकर्मियों को इस नाटक में कुछ न्यूनताएँ भी प्रतीत हुई हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है –

नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा की दृष्टि से, चतुर्थ अंक में, सुमेधा के द्वारा सामवती के वक्षःस्थल और स्तनों का निरावरण प्रदर्शन तथा नारी के द्वारा पुरुष के बलात् आलिंगन को उचित नहीं कहा जा सकता।

संवाद कहीं-कहीं बहुत लम्बे हो गये हैं। तृतीय अंक में, 13 पंक्तियों में सामवान् के द्वारा राजा की प्रशंसा रंग-दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होती। संवादों में अर्थालङ्कारों का प्रयोग भी सम्प्रेषणीयता में बाधक सिद्ध होता है। चतुर्थ अंक में सुमेधा की 32 पंक्तियों की स्वगतोक्ति और आगे 23 पंक्तियों के भाषण का भी औचित्य प्रतीत नहीं होता। यदि उस दीर्घता-दोष को छोड़ दिया जाये, तो संवादों में चुटीलापन मन को आकर्षित करता है। **सामवतम्** के संवाद सामान्यतः पात्रों के व्यक्तित्त्व के अनुरूप हैं।

सामवतम् यद्यपि आज से एक शताब्दी पूर्व की रचना है, किन्तु यह आज के रंगकर्मियों और दर्शकों की दृष्टि से भी प्रासंगिक प्रतीत होती है। यौन-परिवर्तन की विगत वर्षों में कुछ अधिक घटनाएँ हुईं, जिनके कारण भी यह नाटक आज के दर्शक का मनोरंजन करने में विशेष समर्थ है।

सामवतम् : काव्य-कला के निकष पर

सामवतम् का अंगीरस शृंगार है, जिसके संयोग और विप्रलम्भ दोनों ही पक्षों की इसमें समुचित अभिव्यक्ति हुई है। चतुर्थ और षष्ठ अंकों में इस रस की निष्पत्ति मुख्यतः हुई है। सामवती और सुमेधा परस्पर आलम्बन विभाव के रूप में हैं। वन्य सुषमा और विभिन्न शृंगारिक चेष्टाएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं। मकरन्द-मद से मतवाले नयनों वाले भ्रमर का कामातुरा भ्रमरी से मिलन का यह दृश्य किसी को भी प्रेयसी-सान्निध्य के लिए उत्कण्ठित कर सकता है –

"मकरन्दमदोन्माद्यन्नयनो मदनातुराम्।
भ्रमरो मधुरं गुंजन् भ्रमरीमधिगच्छति।।" (–साम. 4.16)

सात्विक भावों के साथ सामवती के द्वारा नेत्र-निमीलन करते समय भी सुमेधा के निर्विकार रहने पर सामवती स्पष्ट शब्दों में उसे रमण हेतु आमन्त्रित करती है –

"नव्यामपि भव्यामपि तापविशेषाद्विशीर्णवरवर्णाम्।
त्वं मां विद्धि प्रियवर! कलिकामिव बहुशिलीमुखैर्विद्धाम्।।
कुरु परिरम्भं गाढं चुम्बनदानैस्तृषां शमय,
मादृशरमणीरमणैरधरीकुरु सुरनिवाससुखम्।।"

– (प्रियवर! तुम मुझे ऐसी सुन्दर और नई कलिका समझो, जो काम-सन्ताप से कुछ-कुछ कुम्हला गई है और काम-बाणों से विद्ध है। मेरा प्रगाढ़ आलिंगन करो, चुम्बन देकर अधरों की तृषा शान्त करो – मेरे सदृश रमणी के साथ रमण करने पर तो तुम्हें स्वर्गिक सुख भी फीका लगेगा।)

विरह-विदग्ध सुमेधा का यह कथन सामवती से उत्कट मिलन की अभिलाषा का द्योतक है –

"कदाऽहं कान्तायाः नलिननयनायाः करतलं,
गृहीत्वा सानन्दं निजकरतलेनातिरुचिरम्।
सुधापारावाराप्लुतमिव मनः स्वं विरचयन्
शचीयुक्तं जिष्णुं चिरमुपहसिष्यामि मुदितः।।" – (साम. 6.7)

– (कब मैं कमलनयनी प्रिया का हाथ आनन्दपूर्वक अपनी हथेली में लेकर, अमृत-सरोवर में मन को आप्लावित करते हुए शची-युक्त इन्द्र से भी अधिक अपने को सुखी अनुभव करूँगा ?)

सामवतम् में श्रृंगारेतर अन्य रसों की भी रमणीय अभिव्यंजना हुई है। सीमन्तिनी के द्वारा दुर्गा-भावना से की गई पूजा से सामवान् का स्त्रीभाव प्राप्त कर लेना अद्भूत रस का निदर्शन है –

विप्रस्त्रीणां मण्डलीमध्यसंस्थो दुर्गाबुद्ध्या पूजितः पूज्यरीत्या।
सीमन्तिन्याः भक्तिभावप्रभावाच्चित्रं चित्रं सामवान् स्त्रीत्वमाप।।

बन्धुजीव, जटिल ब्राह्मण और वसन्तक की चेष्टाओं के माध्यम से हास्य रस की अभिव्यक्ति हुई है।

एक ही शरीर में क्रमशः दाहिनी और बायीं ओर पुरुष और स्त्री की सत्ता अनुभव करते हुए दोनों हाथों से मोदक खाने की बात कहकर वसन्तक ने अच्छा मनोरंजन किया है –

देहे एव दक्षिणं पुरुषो वामं स्त्रीति।
द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां भक्षयिष्यामि।।

शान्त रस का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है –

बाल्यं भीतिवशादमोहहसनैः क्रीडाहतो रोदनैः
व्यापारैः नृपनीतिभिः खरतरैः संयापितं यौवनम्।
अद्य श्वोऽथ हरिं भजाम्यकपटश्चेत्थं कटिं बध्नतो
झंझावातमिषेण कोपकलुषः प्राप्तोऽन्तको घस्मरः।।

– (बचपन मैंने भयवश विना चिन्ता किये हँसने, रोने और खेलने में गँवा दिया; यौवन तेज़ी से व्यापार और राजनीति करने में चला गया। निष्कपट हरिभक्ति करने के लिए आज कल करते-करते मैं तैयारी ही करता रह गया – और इसी बीच झंझावात के बहाने, क्रुद्ध और बड़े पेट वाला काल उपस्थित हो गया !)

प्रकृति वर्णन – सामवतम् में व्यास जी ने प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। वन्य सुषमा, तपोवन की बहुविध छवियाँ, मेघों की चमक, बिजली की कौंध, चन्द्रोदय, निशीथ और सूर्योदय की मोहक भंगिमाएँ सामवतम् में दिखलाई देती हैं। उद्दीपन के साथ ही, कहीं-कहीं, आलम्बन रूप में भी प्रकृति-चित्रण हुआ है। चन्द्रमा के अस्त होने और सूर्य के उदित होने का यह संयुक्त वर्णन द्रष्टव्य है–

रात्रौ चन्द्रेण भुक्ताममरपतिदिशं वीक्ष्य भानुः स्वकीयां,
क्रोधादारुण्ययुक्तस्तरणिरपिकरं कैरविण्यां चकार।
दृष्ट्वा तं चैव चन्द्रः कमलविहसितः खेदपाण्डूकृतांगः
मन्ये पीत्वा विषं वै गिरिषु निपतितो लांछनस्य छलेन।।

(–सूर्य ने, यह देखकर कि रात्रि में उसकी (प्रिया) पूर्व दिशा का उपभोग चन्द्रमा ने किया है, क्रोध, से लाल-लाल होकर अपनी किरणें श्वेत कमलों के समूह पर बिखेर दीं। इधर चन्द्रमा कमलों के द्वारा किये गये अपने उपहास को देखकर

खेद से पीला पड़ गया और वह लांछन के भय से विष पीकर पर्वत-श्रेणी (अस्ताचल) पर गिर पड़ा।)

अन्य पुरुष के द्वारा अपनी प्रिया का उपभोग करने से प्रेमी के हृदय में जैसे क्रोध का संचार होता है, उसी प्रकार मधुपों से संगत कुमुदिनी को देखकर क्रुद्ध चन्द्रमा का यह चित्र भी अत्यन्त आवर्जक है –

कुमुदिनीं मधुपैः सह संगतां समवलोक्य निजां रमणीमिमाम्।
कलितकोपसुकोकनदच्छवि श्चलकरः समुपैति जवाद् विधुः।।

(– साम. 2.19)

अलंकार-योजना – सामवतम् की भाषा के सौन्दर्य को अलंकारों का प्रयोग बढ़ा देता है। अन्त्य अनुनासिक व्यंजन की झंकार से युक्त अनुप्रास-प्रयोग का एक उदाहरण यों है –

सिंजन्मंजीरं स्मितहृतवीरं मोदित धीरं चित्तहरम्,
चलनयनललामं पूरितकामं कटिगतिवामं कान्तिधरम्।
संगीतसुसंगं रणितमृदंगं सांगविभंगं मोदपरम्,
नृत्यति हरदग्धाजननविदग्धा मधुरा मुग्धा परमवरम्।।

उमपा – व्याकरण-पुस्तिका के साथ वीणा की समानता स्थापित करनेवाला यह पद्य अवलोकनीय है –

धातुसूत्रसमायुक्ता साधुशब्दस्य साधिका।
क्व वाद्यत इयं वीणा पुस्तिका व्याकृतेरिव।।" (– साम. 1.56)

व्याकरण की पुस्तक और वीणा दोनों में समान रूप से प्राप्त होने वाले धर्म ये हैं – दोनों ही धातुओं से युक्त होती हैं (–व्याकरण में क्रिया-धातुएँ होती हैं और वीणा का निर्माण सुवर्णादि धातुओं से किया जाता है), दोनों में सूत्र (सूत्र-शैली में लिखे गये नियम-वाक्य, तार) होते हैं। शब्द को ठीक-ठीक निकालना दोनों की ही उपलब्धि है।

नायक की रसाल वृक्ष से और नायिका की मालती लता से समानता को पुरस्कृत करते हुए, उपमा का निम्नलिखित उदाहरण भी मनोहर है –

रसाल इव सानन्दं ललितां मालतीलताम्।
कदा तां परिरप्स्येऽहं बालां सामवतीं प्रियाम्।। (– साम. 6.5)

दोनों के मध्य आलिंगन साधारण धर्म है।

यमक – 'मारुत' और 'मधुप' शब्दों पर आश्रित यह पद्य यमक के चमत्कार का उत्कृष्ट निर्दशन है –

मा तापय मा मारुत मारुतमाकलय कलकण्ठ!
किं रे कूजथ मधुपाः मधुपानं कुरुत तूष्णीकाः ।
चित्ते चिन्तनमात्रेण प्रसभं प्रियया हृते
शून्या इव दिशः पश्यन् कः कस्मै किं निवेदयेत् ।।

(–हे पवन ! तू मत बहुत तपा। ओ सुकण्ठिनी कोयल ! "कू-कू" मत कर। अरे भौरो ! क्यों गुंजार कर रहे हो ? चुपचाप मधु-पान करो न ! जब विचारमात्र से बरबस प्रिया के द्वारा हृदय हर लिया जाता है, तब सारी दिशाएँ शून्य लगती हैं – उस समय कौन किससे क्या निवेदन कर सकता है ?)

यहाँ 'मारुत' की आवृत्ति दो बार हुई है पहली बार वह पवन के सन्दर्भ में है और दूसरी बार ध्वनि न करने (मा-रुतम् आकलय) के अर्थ में है।

इसी प्रकार 'मधुपाः' की आवृत्ति भी दो बार अलग-अलग अर्थों में हुई है। दृष्टान्त –इसके उदाहरणस्वरूप वह पद्य प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके अनुसार नाटक के अभिनय से उसके पढ़ने का आनन्द लाख गुना अधिक उसी प्रकार बढ़ जाता है, जैसे हाथ से संस्पृष्ट वीणा के तार बजाये जाने पर अमृतरस की वर्षा करने लगते हैं –

नाटकपठनानन्दो लक्षगुणो भवति नाटकाभिनयैः।
करसंस्पृष्टा तन्त्री क्वणिता पीयूषवर्षमातनुते।। (– साम. 1.5)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कतिपय न्यूनताओं के होते हुए भी "सामवतम्" नाटक संस्कृत नाट्य-साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। स्वयं लेखक इसकी मनोहरता के विषय में आश्वस्त प्रतीत होता हैं। उसका कथन यहाँ उल्लेखनीय है –

"युक्तं हि, कस्य हृदयं न हरति सामवतं नाम नाटकम् ? यस्मिन् सामवत्सुमेधसोर्मित्रता, सामवतो धीरस्यापि मदालसा साक्षात्कारेण कामवशंवदता, अल्पापराधेऽपि दुर्वाससः कठिनशापता, तपस्तपितस्यापि कलेः पापता, निरर्गलहोलिकोत्सवस्य दुरन्तता, रातप्रमादस्यागन्तता, कपटस्य दुःखदता, भक्तिभावस्यापूर्वसामर्थ्यता, काममार्गणानां दुर्वारता, धीरधौरेयस्यापि सुमेधसो धन्यता, विप्रकोपस्य भयङ्करफलता, दैवघटनायाश्चावश्यम्भाविता, सहृदयहृदयहारिरसोल्लासभंगीभिर्बहुधा प्रदर्शिता ।"[1]

1. सामवतमु, पृ० 7

व्यास जी की अन्य संस्कृत कृतियाँ

पं. अम्बिकादत्त व्यास ने **शिवराजविजय** और **सामवतम्** संज्ञक उत्कृष्ठ कृतियों का प्रणयन करने के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाएँ भी, संस्कृत में निवद्ध की थीं। इनका सम्बन्ध भक्ति, दर्शन, कोश-कला और शिक्षाभ्यास से है। विषयानुसार इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है –

(1) भक्तिपरक –**सहस्रनामरामायणम्**।

(2) दार्शनिक तथा पौराणिक विषयों के ग्रंथ –(क) **सांख्यसागर सुधा**, (ख) **पातंजलप्रतिविम्व**, (ग) **दुःखद्रुमकुठार** (घ) **अवतारकारिका**।

(3) कोश-रचना – **प्राकृत विचित्र शब्दार्थकोश**

(4) शिक्षाविषयक – (क) **गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्**, (ख) **वाल-व्याकरण**, (ग) **संस्कृताभ्यास-पुस्तकम्** (दो भागों में) (घ) **कथाकुसुमम्**। इनका पृथक्-पृथक् विवरण निम्न प्रकार है –

सहस्रनामरामायणम्

यह संस्कृत की भक्तिभावित स्तोत्र-काव्य-परम्परा का पुरोवर्तन करने वाली काव्य-कृति है। ऋग्वेद से लेकर श्रेण्य संस्कृत साहित्य तक संस्कृतवाङ्मय स्तोत्र ग्रन्थों का अनन्त आकर है। इसी में इष्टदेव के शत और सहस्रनामों का उल्लेख करते हुए उनकी गुणानुवादपूर्वक स्तुति करने की भी प्रशस्त परम्परा है। **विष्णुसहस्रनाम**, **गोपालसहस्रनाम**, **देवी सहस्रनाम**, **गणेशसहस्रनाम**, **हनुमत्सहस्रनाम** प्रभृति एतद्विषयक स्तोत्र आज भी भक्तों के कण्ठहार हैं।

सहस्रनाम–काव्यों की इसी परम्परा में व्यास जी ने **सहस्रनामरामायणम्** काव्य की रचना की । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्र के गुणों का बखान करने वाले एक हज़ार नाम 195 पद्यों में निवद्ध हैं। साथ ही गणेश, कमला, शारदा, विष्णु प्रभृति देव-देवियों के स्तोत्र दिये गये हैं। दशरथ-पुत्र राम को साक्षात् परब्रह्म का अवतार बतलाकर सहस्रनामों के माध्यम से सम्पूर्ण रामायण की गाथा इसमें अंकित है। सात काण्डों में यह विभक्त है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में श्रीराम और उनकी

कथा की पावनता उपजाति छन्द में निरूपित है। श्रीराम के परब्रह्मस्वरूप के निदर्शक कुछ पद्य ये हैं –

चिदानन्दश्चिदाभासश्चिन्मूर्त्तिश्चेतनस्थितिः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दो देवतावृन्दवन्दितः ।।[1]
परमात्मा परब्रह्ममाविज्ञेयः पुरुषोत्तमः । [2]

भगवान राम अनेक महनीय गुणों से युक्त हैं। वे प्रजा की पीड़ा के निवारक और आनन्दप्रद हैं –

यशस्वी च तपस्वी च तेजस्वी च तेजस्वी मुनिमानितः ।
प्रजापीडाभोचकश्च प्रजालोचनरोचनः ।।
व्रती विद्वान् प्रियः प्रेमी गुणिगण्यो गुणप्रियः ।
कृतज्ञः क्रतुकृत् काम्यः कृती कृत्यसमापनः ।।[3]

कथा-क्रम को आगे बढ़ाने का कार्य कवि ने नाम-माला के द्वारा ही किया है –

हनूमद्विहितालापो हनूमदनुगोपमः ।
सुग्रीवालोकप्रीतः श्रुतसुग्रीवदुर्दशः ।।
बालिनाशप्रतिज्ञाता सुग्रीवाश्चर्यकारणम् ।
दुन्दुभ्यस्थिसमुत्क्षेपी तालच्छेदनकौतुकी ।।
सुग्रीव भयविच्छेत्ता सुग्रीवप्रत्ययप्रदः ।
सुग्रीवविहितस्नेहो मित्रं मित्रसुखास्पदम् ।।[4]

उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट होता है कि श्रीराम ने हनुमान जी से वार्तालाप किया, उनके साथ सुग्रीव के समीप गये। सुग्रीव की दुर्दशा को सुनकर बालि-वध-हेतु प्रतिज्ञा की– इससे सुग्रीव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। (सुग्रीव को भरोसा दिलाने के लिए) उन्होंने दुन्दुभि की अस्थियों को दूर फेंक दिया। ताड़ के पेड़ों को काट गिराने का कौतुक किया। श्रीराम के इन कार्यों से सुग्रीव का विश्वास उनमें दृढ़ हो गया। सुग्रीव के प्रति स्नेह प्रकट करते हुए श्रीराम ने उन्हें अपना मित्र बना लिया।

कहीं-कहीं इस कृति में उत्कृष्ट काव्यात्मक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत है –

"पयोजपत्रपुटगपम्पापानीयपूजितः ।
पम्पापरिसरस्थायी पम्पापवनपावनः ।।"[5]

---

1. सहस्रनामरामायणम्, बालकाण्ड,।
2. सहस्रनामरामायणम्, उत्तरकाण्ड, 195
3. वही, बालखण्ड 72
4. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 137-139
5. सहस्रनामरामायणम्, अरण्यकाण्ड, 130

अभिप्राय यह कि सहस्रनामरामायणम् व्यास जी की प्रबन्ध-प्रतिभा और काव्य-कौशल से अनुप्राणित भक्तिपरक स्तोत्र-काव्य है ।

सांख्यसागरसुधा

यह सांख्य दर्शन का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक लोगों के निमित्त रचित कृति हैं इसके मूलाधार में ईश्वरकृष्ण-विरचित 'सांख्यकारिका' और उसकी वाचस्पति मिश्र-प्रणीत 'तत्त्वकौमुदी' नाम की टीका निहित प्रतीत होते है। इस प्रकार से यह सांख्य दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है।

पातंजलप्रतिविम्व (योगतत्त्व कौमुदी)

यह ग्रन्थ कारिका शैली में लिखित है। पतंजलि-प्रणीत योग-सूत्रों का आधार-ग्रहण करके योग के विभिन्न सिद्धांतों की जानकारी इसमें सँजोई गई हैं। इसकी रचना का प्रयोजन योग-दर्शन के जिज्ञासुओं के निमित्त सरलता से विषय का उपपादन है –

पातंजलसूत्राणां परिणामं कारिकारूपम्।
रचयामि यथा सुकरः स्यादभ्यासः पिपठिषूणाम्।।[1]

विषय-निरूपण-क्रम योगसूत्रवत् है। कहीं-कहीं व्यास-भाष्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

दुःखद्रुमकुठार

दार्शनिक तथा आध्यात्मिक अधिष्ठान पर आरूढ़ यह एक विचारपूर्ण निबन्धात्मक रचना है, जो संस्कृत-वाङ्मय में अपने ढंग की अकेली है। आज तो संस्कृत में निबन्धों को प्रणयन अजस्र रूप से हो रहा है, किन्तु एक शती पूर्व यह आरम्भिक अवस्था में ही था।

कहा जाता है कि यह वैयक्तिक शोक से पर्यवसित कृति है। अपने अनुज गोविन्दराम के अठारह वर्ष की अल्पायु में ही हुए निधन से व्यास जी को जीवन की दुःखमूलकता का जो साक्षात्कार हुआ, उसी ने उन्हें इसकी रचना के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के असामयिक अवसान का प्रभाव भी, इसके मूल में, वतलाया जाता है। व्यास जी के वैयक्तिक शोक के फलस्वरूप उपजी रचना होने पर भी, वैश्विक पीड़ा को अभिव्यक्त करती है।

भारतीय दार्शनिकों के एक वर्ग के अनुसार सम्पूर्ण मानव-जीवन मूलतः दुःखमय है। दुःखों से यह आरम्भ होता है और अन्त में दुःख भोगते हुए ही समाप्त भी होता हैं। इन दुःखों से छुटकारा पाने की प्रवृत्ति भी सभी में स्वभावतः होती है।

---

1. पातंजल प्रतिविम्ब, प्रारम्भ – 2

'सांख्यकारिका' में इसीलिए त्रिविध दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति-निमित्त के सन्धान का परामर्श दिया गया है – "दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।"[1]

दुःखद्रुमकुठार का प्रतिपाद्य भी यही हे कि प्राणी माता के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु तक दुःख-भोग करता रहता है, जिससे मुक्त होने का एकमात्र उपाय भगवद्भक्ति ही है। जीवन में जो विषय आपाततः सुखप्रद प्रतीत होते हैं, जैसे प्रणय-प्रसंग और संतानोत्पादन इत्यादि – वे भी अन्ततः विषादकारक ही होते है। व्यक्ति भ्रमवश कैसे विकृत और बीभत्स विषयों में, मोहाविष्ट होकर फंस जाता है, इसका विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में अवलोकनीय है –

"वनितायाः निष्ठ्यूतनिधानमप्यधरं सुखाधारत्वेन, मांसग्रथनकठिनावपिकुचौ पीयूषकुम्भत्वेन, ताम्बूलचर्वितचर्चितास्थिखण्डानपि दन्तान् दाडिमी बीजत्वेन, निगारोद्गारनलिकायमानमपि कण्ठं दिव्यशंखत्वेन, दूषिका दूषिते अपि नेत्रे कमलकोरकत्वेन, सप्तच्छिद्रीच्छिद्रीकृतमपि वदनमिन्दुमण्डलत्वेन, सकलमलपिटकमप्युदरं सुन्दरतामन्दिरत्वेन, अस्थिपटलमपि पृष्ठं सुवर्णकदलीदलत्वेन, मांसावटमपि नाभिममृत्वापीतवेन वर्णयन ।"[2]

(स्त्री के थूक-पीकदान जैसे अधरोष्ठ का सुख के आधाररूप में, मांस के गठन से कठोर स्तनयुग्म का अमृतकलश रूप में, पान की पीक से रँगे अस्थिखण्ड रूप दाँतों का अनार दानों की तरह, निगलने और उगलने के काम आनेवाली नली के रूप में स्थित कण्ठ का दिव्यशंख के सदृश, कीचड़युक्त आँखों का कमल-कलिका के सदृश, सात छेदों से छिदे मुख का चन्द्र-मण्डल के सदृश, समस्त मल के पिटारे जैसे उदर का सुन्दरता के आगार रूप में, हड्डियों के समूह रूप में अवस्थित पीठ का सुवर्णनिर्मित कदली दल के रूप में और मांस के भीतर गड्ढे की तरह स्थित गड्ढे का अमृतवापी के रूप में वर्णन करते हुए ।)

दुःखद्रुमकुठार की विचारधारा पर बौद्ध, अद्वैतवेदान्ती और कुछ मध्ययुगीन भक्त-कवियों की विचारधारा का विशेष प्रभाव दिखायी देता है। ये सभी जीवन की दुःखमयता को रेखांकित करते रहे हैं।

विवेच्य कृति का दूसरा पक्ष है ईश्वर-भक्ति का समर्थन। दुःखद्रुम का छेदन उसी परमात्मा के स्मरण से हो सकता है, जो करुणा का सागर है, चक्रवर्तियों का भी चक्रवर्ती है, पितरों का भी पितामह और संसार का रचयिता है। उसके प्रसन्न होने पर कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता है, उसे ही स्मरण करना चाहिए –

---

1. सांख्यकारिका - 1
2. दुःखद्रुमकुठार, पृष्ठ 6

"तस्मिंश्च श्रीकेतने भगवति प्रसन्ने किं नाम अलभ्यं स्याद् इति निश्चित्य अश्रुकलाकुलितलोचनः कण्टकितांगो द्रवितचित्तो नारायण ! परमेश्वर ! जगदीश्वर ! परमात्मन् ! विष्णो ! वैकुण्ठ ! केशवमाधव ! गोविन्द ! मुकुन्द ! पुण्डरीकाक्ष! मधुसूदन ! गरुडध्वज ! पीताम्बर ! अच्युत ! जनार्दन ! असुरमर्दन ! पाहि-पाहि शरणा-गतोऽहं, छिन्दिच्छिन्दि दुःखद्रुममेतम् इत्यार्त्तस्वरेण क्रन्दन्निवोच्चैः परमपुरुषमेवोपतिष्ठते तस्य तु तस्मिन् जगन्नियन्तरि प्रसन्ने किं नाम स्यादलभनीयमजरणीयमपरिहरणीयमननुभवनीयं च ।"[1]

आर्त्त होकर, शरणागतिपूर्वक भगवान् को पुकारने का यह उपाय पूर्ववर्ती वैष्णव भक्तों के द्वारा प्रदत्त होने पर भी, उसका पूर्वापर-सन्दर्भ-निदर्शनसहित प्रतिपादन व्यास जी की उपलब्धि है।

व्यास जी की अन्य गद्य-कृतियों की अपेक्षा इस ग्रन्थ की भाषा, प्रतिपाद्य के अनुरूप अधिक सुबोध और प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं नामधातुओं के प्रयोग से उसकी सम्प्रेषणीयता में वृद्धि हो गई है।[2]

अवतारमीमांसा-कारिका

यह कृति **अवतारमीमांसा** नामक हिन्दी ग्रन्थ के एक अंश के रूप में है। इसमें अनुष्टुप छन्द में निबद्ध 261 कारिकाएँ हैं। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध —इन दो भागों में निबद्ध है।

व्यास जी जिस समय में सक्रिय थे, उसी समय आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ईश्वर के अवतार लेने का खण्डन कर रहे थे। विष्णु के विभिन्न अवतारों का विवेचन मनीषियों ने अनेक दृष्टियों से किया है। कुछ का विचार है कि सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रचलित विविध ईश्वरीय रूपों की उपासनाओं का अवतार-सिद्धान्त में समुच्चय है। व्यास जी सनातन धर्म के विशिष्ट प्रचारक थे ही। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रचार करते हुए, जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान करते हुए उन्हें इस ग्रन्थ के प्रणयन की प्रेरणा प्राप्त हुई। **अवतारमीमांसा** से विदित होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य जीवनलाल ने इस ग्रन्थ के निर्माण के लिए व्यास जी को प्रोत्साहन प्रदान किया।

पुस्तक के नाम से स्पष्ट है कि परमात्मा के इस वसुन्धरा पर, पाँच भौतिक शरीर में अवतरण की विवेचना ही व्यास जी का उद्दिष्ट है। अवतारवाद के विषय में उठाई गई शंकाओं का आठ प्रश्नों के रूप में, पूर्वार्द्ध में, समाधान किया गया है। उत्तरार्द्ध में अन्य प्रश्नों के उत्तर हैं। 12वीं कारिका में भगवान् की लीलाप्रियता का सुन्दर वर्णन है –

1. दुःखद्रुमकुठार, पृष्ठ 16
2. वही, पृष्ठ 17

"लीलाप्रियोऽयं भगवान् लीलार्थं कुरुतेऽखिलम् ।
लीलारंगालये लीलाः पात्रत्वेनावलम्बते ।।"

ग्रन्थकार के अनुसार अवतार-विवेचना श्रद्धा एवं विश्वास को प्रदान करनेवाली, कुतर्कों को काटनेवाली तथा शंका रूपी पंक से उत्पन्न कष्ट को दूर करनेवाली है–

"एषावतारमीमांसा श्रद्धाविश्वासदायिनी ।
कुतर्ककर्तनी शंकापङ्क संकष्टशोषिणी ।।" (– 257वीं कारिका) ।

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

दैनन्दिन व्यवहार में, संस्कृत भाषा के प्रयोग के अभाव तथा व्याकरण की जटिलतावश पण्डितजनों से भी कभी-कभी संस्कृत लिखने में भूल हो जाती है। बहुत-सी अशुद्धियाँ बिल्कुल शुद्धियों जैसी लगती हैं लेकिन वास्तव में वे दोष ही उत्पन्न करती हैं। ऐसी निगूढ़ वैयाकरणिक अशुद्धियों की ओर, जिनकी ओर सामान्यतः लोगों का ध्यान नहीं जाता, ध्यानाकर्षण ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। सामान्यतः जो अशुद्धियाँ देखी जाती हैं, वे इस प्रकार की होती हैं – आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद में प्रयोग कर जाना और परस्मैपदी का आत्मनेपद में; नपुंसकलिङ्ग के शब्दों का पुल्लिंग में प्रयोग और पुल्लिंग का अन्य लिङ्गों में प्रयोग; कृदन्त तथा सुबन्त रूपों में त्रुटि; सन्धि और समासजन्य भूलें – इत्यादि। संस्कृत-पण्डितों के मध्य इस ग्रन्थ का प्रचार 'पण्डित-पछार' रूप में है।

यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है – गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् तथा व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्। दोषयुक्त रचना का एक उदाहरण इस प्रकार है –

"न कोऽपि मित्रस्त्वद् ऋते यो गापयति नारदम् ।
त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि मां भैः कस्ते विना वदेत् ।।" (अष्टम श्लोक) ।

उपर्युक्त श्लोक में 'मित्रः' और 'प्रीतिपात्रः' के स्थान पर नपुंसकलिङ्गगत मित्रम् और 'प्रीतिपात्रम्' होना चाहिए। 'भैः' के स्थान पर भैषीः प्रयोग विहित है। इसी प्रकार 'विना' के साथ द्वितीया अथवा तृतीया विभक्ति का प्रयोग वांछित है – अतः ते के स्थान पर 'त्वाम्' या 'त्वया' होना चाहिए।

बाल-व्याकरण

इस पुस्तक का प्रयोजन छात्रों को अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से, संस्कृत व्याकरण के नियमों का संक्षेप में ज्ञान कराना है। व्यास जी के समय में यह बिहार के ज़िला स्कूलों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित थी। इसमें वर्णमाला-परिचय, सन्धि-नियम, शब्दों और धातुओं के रूप, अव्यय, कृदन्त और उपसर्गादि विषयक नियमों का उल्लेख किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में संकलित सम्मतियों से ज्ञात होता है कि इसकी प्रशंसा तत्कालीन विशिष्ट विद्वानों ने की थी।

संस्कृत-अभ्यास-पुस्तकम्

इसका लेखन अंग्रेज़ी की वाक्य-रचना की पुस्तकों के सदृश की गई है। यह भी अंग्रेज़ी माध्यम से है। यह भी बिहार के विद्यालयों के पाठ्यक्रम में समाविष्ट थी।

इसमें व्याकरण के नियम बतलाकर उनका क्रियात्मक अभ्यास कराने का प्रयत्न किया गया है।

प्राकृत विचित्र शब्दार्थकोश

नाटक 'सामवतम्' में, संस्कृत-नाटकों की परम्परा का अनुवर्तन करते हुए, संस्कृत के साथ ही प्राकृत का भी प्रयोग है। नाटक के अन्त में, संस्कृत-पाठकों के सौविध्य-हेतु प्राकृत शब्दों के संस्कृत-रूपान्तर दिये गये हैं। शब्दों का यह संकलन ही **प्राकृतविचित्र शब्दार्थकोश** के नाम से अभिहित है। प्राकृत शब्दों के संस्कृत-रूपान्तर हेमचन्द्र और वररुचि प्रभृति वैयाकरणों के द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुरूप हैं। इस कोश का उल्लेख स्वयं व्यास जी ने **बिहारी-विहार** की अपनी कृतियों की सूची में किया है।

कथाकुसुमम्

सुबोध और प्रवाहमयी भाषा में, 25 लघु शिक्षाप्रद कथाएँ **कथाकुसुमम्** में संकलित हैं। इनका प्रणयन संस्कृत के आरम्भिक छात्रों के निमित्त हुआ था। प्रारम्भ में चार-पाँच पंक्तियों की कथाएँ हैं और आगे चार-पाँच पृष्ठों की। कथा-लेखन में 'ईसप की कहानियाँ', 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' प्रभृति का आधार-ग्रहण किया गया है। प्रत्येक कथा के अन्त में, कथा से प्राप्य शिक्षा का एक श्लोक के रूप में उल्लेख है। पुस्तक में संस्कृत शब्दों के हिन्दी और अंग्रेज़ी में अर्थ भी दिये गये हैं। एक कथा का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

> "तत्र अतिस्पष्टं सुस्वरं सुमधुरं च भाषणमाकर्ण्य ते सर्वे अतिप्रसन्नाः जाताः। धनिकोऽपि च विश्वासमापन्नः पुनरपृच्छत् – "तत् किमहं लक्षमेव मुद्रा दद्याम्?" ततः स पुनरुवाच – "अत्र कः सन्देहः" इति। ततस्तु एकेनैव वचनेन प्रश्नद्वयमुत्तीर्णम्, इति चकितः प्रसन्नश्च धनिकः अपरीक्ष्यैव तस्मै लक्षं मुद्रा दत्वा शुकं क्रीतवान्।"

इस प्रकार व्यास जी के द्वारा प्रणीत संस्कृत-कृतियों में एक ओर जहाँ मौलिक सर्जनात्मक ग्रन्थ हैं, वहीं छात्रों और जनसामान्य को सरलता से संस्कृत सिखाने के लिए लिखी गई पुस्तकें भी सम्मिलित हैं। भारतीय दर्शन की विशिष्ट उपलब्धियों को सुबोध रीति से सम्प्रेषित करने के लिए उन्होंने **सांख्यसागर सुधा** तथा **प्रातंजलप्रतिबिम्ब** सदृश प्रकरण ग्रन्थ लिखे।

हिन्दी-साहित्य को योगदान

प्रारम्भ में यह उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी में पं. अम्बिकादत्त व्यास की गणना भारतेन्दु-युग के विशिष्ट लेखकों और कवियों के मध्य की जाती है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर अद्यावधि, हिन्दी-साहित्य के जो भी इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये, उनमें व्यास जी के योगदान का ससम्मान उल्लेख है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कविता, नाटक और आलोचना के साथ ही औपन्यासिक कृतियों से भी उन्होंने हिन्दी की श्रीवृद्धि की। धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर तो संस्कृत-मनीषी का स्वभावसिद्ध अधिकार माना जाता है, किन्तु शतरंज और ताश के खेलों पर भी उसकी लेखनी चलेगी, इसकी आशा और अपेक्षा सामान्यतः उनके समसामयिकों के मध्य नहीं की जाती होगी। किन्तु इस मान्यता के विपरीत इन खेलों पर भी व्यास जी ने अनेक लघु कृतियों की रचना की है।

आचार्य शुक्ल-कृत इतिहास के अनुसार भारतेन्दु-युग में व्यास जी ने ही सर्वप्रथम हिन्दी में अतुकान्त लिखने का प्रयोग किया था।

सुन्दरी तिलक संज्ञक काव्य-संग्रह में व्यास जी के होली विषयक आठ सरस सवैये संकलित हैं। एक सवैये में उस नायिका का वर्णन हैं, जो छिपती और छिपाती हुई न जाने किसे रंग में सराबोर करने के लिये चली आ रही है –

'धरती-धरती डरती पद को घुँघरू नहिं नेकु बजावती हो,
झुकी झांकती, भौंह चलावती हो, नकबेसर झूमि झुमावती हो।
कवि अंबिकादत्तहि हेरि, चितै, छिपती-सी हहा मुसकावती हो,
कर में पिचकारी लिए किनकों तुम रंग भिगावत आवती हो।।'

हरि-दर्शन के पश्चात् उसकी क्या दशा हुई, यह भी अवलोकनीय है –

"गई आजु हुती व्रज बाट सखी, सु कहा कहूँ साध धरी की धरी रही
हरि आय अचानक धौं कित सों, महिं अंक भरी मैं खरी की खरी रही।
कवि अंबिकादत्त के हाथ परी, भरी झोरी अबीर परी की परी रही
लरकी लरी हार चुरी कर की, कर की पिचकारी भरी की भरी रही।।"

---

1. भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्त, 1956 ई. , वाराणसी।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित व्यास जी का काशी-वर्णन भी बहुचर्तित रहा है। उसके कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं –

बरनि सकै को विश्वनाथ की पुरी सुहावनि,
देवन चित तरसावन, मुनिजन हिय हरखावन।
दूरहि ते दरसात बिलच्छन वाकी सोभा,
चलत-चलत लखि ठठकि जात पथिकहु मन लोभा।
सीतल लखि के गंगा-तट हर गिरि जनु सोयो,
मनहुँ मेघ को वृन्द भूमि-तल आय समोयो।
अहै मनहु साकेत पुरी जल-थल सों ऊँची,
कैंधौं है बैकुण्ठपुरी, सुखदानि समूची।
ऊँचे-ऊँचे कलस दूर ही सों अति चमकत,
चंद, सूर की किरन परैं, दूनी दुति दमकत।
अमृत घट सिर लिए मनहुँ गृहदेवी गाढ़ी,
जात्रीगन को मंगलमय छवि दीखत बाढ़ी।।

भाव-बोध की दृष्टि से, भारतेन्दु-युग के अन्य कवियों के सदृश व्यास जी ने भी देश की दुर्दशा पर चिन्ता प्रकट की है। विदेशी सौन्दर्य-प्रसाधनों और वस्त्राभूषणों के प्रति स्वदेशवासियों का आकर्षण उन्हें शुभ लक्षण नहीं प्रतीत हुआ –

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर,
भालू चरबी चर्वि लेवेंडर को लगाइ फिर।
निज भाइन के रुचे वसन, भूषन नहिं भावत,
मैनचेस्टर अरु लिवरपूल से लादि मँगावत।।

विषय-क्रम से व्यास जी की हिन्दी-कृतियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है –

(क) नाटक –
(1) ललिता नाटिका, (2) गोसंकट नाटक, (3) भारत-सौभाग्य, (4) कलियुग और घी, (5) मन की उमंग।

(ख) काव्य –
(6) सुकवि-सतसई, (7) पुष्पवर्षा, (8) ईश्वरेच्छा।

(ग) कविता-संग्रह –
(9) विहारी-विहार, (10) धर्म की धूम, (11) पावस-पचासा, (12) हो ! हो ! होरी, (13) झूलन-झमंक।

(घ) उपन्यास –
(14) आश्चर्य वृत्तान्त, (15) स्वर्ग-सभा।

(ङ) धार्मिक तथा दार्शनिक रचनाएँ –
(16) मूर्ति-पूजा, (17) अवतार-मीमांसा, (18) सांख्यतरंगिणी, (19) तर्क-संग्रह (भाषा-टीका)

(च) क्रीड़ाविषयक –
(20) चतुरंग-चातुरी, (21) तास कौतुकपचीसी, (22) महातास-कौतुक-पचासा।

(छ) काव्यशास्त्रसम्बन्धी –
(23) गद्यकाव्यमीमांसा

(ज) विविध –
(24) विभक्ति-विलास, (25) साहित्य-नवनीत, (26) संस्कृत-संजीवन, (27) निज वृत्तान्त, (28) क्षेत्र-कौशल, (29) कथाकुसुमकलिका, (30) भाषा ऋजुपाठ, (31) अबोध निवारण।

इन परिमित पृष्ठों में, व्यास जी के व्यापक लेखन का, संक्षिप्त परिचय ही सँजोया जा सकता है।

ललिता (नाटिका)

रास-लीला के अभिनयार्थ ब्रजभाषा में यह नाटिका रची गई है। इसमें सरस गीतों और मनोहर संवादों के माध्यम से बालगोपाल कृष्ण और ललिता गोपी के मध्य श्रृंगार-चेष्टाओं का निरूपण है। रास-लीला को आध्यात्मिकता का रंग देने का प्रयत्न भी परिलक्षित होता है। नाटिका के अन्त में नारद का कथन है कि कृष्ण भगवान के अवतार हैं और गोपियां देवियों की। कवि उन गोपियों की चरण-रज पाने के लिए, वृन्दावन में गुल्म, लता और वनस्पति तक होने के लिए इच्छुक है –

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपब्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनम्।।
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
याः दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

नाटिका की कथावस्तु के अनुसार गोपी ललिता कृष्ण के वियोग से व्यथित है। उसकी सखी विशाखा मनसुखा गोप के साथ मिलकर ललिता के पति गोवर्धन को किसी बहाने मथुरा भेज देती है तथा आधी रात में कन्हैया को गोवर्धन के वेश में ललिता के पास पहुँचा देती है। गोवर्धन के लौटने पर कन्हैया खिड़की से कूदकर भाग जाते हैं। गोवर्धन इस पर बहुत क्रोध प्रकट करता है – उसका समाधान नारद उपर्युक्त आध्यात्मिक दृष्टिकोण से करते हैं, जिसके अनुसार गोपियों का जन्म ही लम्बी तपस्या के उपरान्त विष्णु के अवतार कृष्ण के साथ लीला करने के लिए हुआ है। विदाई के समय कन्हैया से पुनर्मिलन-हेतु ललिता का निवेदन बहुत मार्मिक है –

सब रोज की बात कहें न कछू कबहुँ तो हमें हरसायो करो,
अति प्यारी तिहारी अनेक अहैं पै लऊ तऊ चित्त लगायों करो।
मनमोहिनी मूरति को दरसाइ के नैनन को सरसायो करो,
पिय प्यारे छली ! हमरी हू गलीन में भूलि कै तो भला आयो करो।।

गोसंकट (नाटक)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से, गो-हत्या के विरुद्ध जंनमत तैयार करने के लिए व्यास जी ने संवत् 1939 में इस नाटक की रचना की थी। पहले इसका प्रकाशन उचितवक्ता नामक पत्र में हुआ, बाद में यह पुस्तकाकार छपा।

इसकी मूल कथावस्तु बादशाह अकबर के द्वारा गोहत्या के निषेधार्थ जारी फ़रमान पर आधारित है। इसमें गोवंश की उपयोगिता का विशद वर्णन है। गाय की महिमा को रेखाङ्कित करनेवाला यह गीत उल्लेखनीय है –

धनि धनि भारत की निधि गैया।
दूध पिआइ सबनि प्रतिपालति ज्यों बालक की मैया।
दही, मलाई, माखन, खोया, दूध, घीव उपजैया।
सब पकवान साज को सजि-सजि आपु घास चरवैया।
धनि धनि भारत की निधि गैया।।

इस प्रकार 'गोसंकट' नाटक के गीत उद्देश्यपूर्ण और हृदयग्राही हैं।

भारत-सौभाग्य

यह प्रतीकात्मक नाटक है, जिसमें भारत-सौभाग्य, विषय-भोग, भारत-दौर्भाग्य, प्रताप, उत्साह तथा शिल्प पुरुष पात्रों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। मूर्खता, फूट, शिक्षा, एकता, भारतपताका, अंग्रेज़ी पताका, राजभक्ति, यन्त्रविद्या, उदारता और दया को स्त्रीपात्रों के रूप में उपस्थित किया गया है। 'भारतसौभाग्य' की तुलना संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक से की जा सकती है।

कलियुग और घी

इस छोटे-से रूपक में, घृत में मिलावट करने की समस्या को उठाया गया है। इसकी रचना संवत् 1943 वि. में की गई थी।

मन की उमंग

यह वास्तव में सात लघुकाय एकांकियों का संकलन है। पाँच एकांकियाँ हिन्दी में हैं और दो संस्कृत में। संस्कृत के 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' संज्ञक रूपकों की चर्चा पहले हो चुकी है। हिन्दी रूपक ये हैं – भारत-धर्म, संस्कृत-सन्ताप, देवपुरुष-दृश्य और जटिल वणिक। इनके अतिरिक्त **मन की उमंग** में कतिपय भजन और प्रार्थनाएँ भी संगृहीत हैं। 'भारत-धर्म' में संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं, वेशभूषा, धर्म तथा आचारादि प्राचीन भारतीय गौरव-गरिमा का समर्थन किया गया है।

'धर्मपर्व' में दो मित्र भारतीय संस्कृति के ह्रास पर वार्तालाप करते हुए दिखाई देते हैं।

'संस्कृत-सन्ताप' में संस्कृत भाषा की अवनति के कारणों की छानबीन की गई है।

'देवपुरुष दृश्य' में, हिमालय की अतुलनीय सुषमा का अवलोकन करते हुए ब्राह्मण को इन्द्रलोक का गन्धर्व अभिवादन करता है। वह उसे आश्वासन देता है कि भारत की पुनः उन्नति होगी।

'जटिलवणिक्' एक जटिल तपस्वी और एक वैश्य के वार्त्तालाप के रूप में है। वार्त्तालाप का विषय चित्तौड़ की रक्षा है।

सुकवि-सतसई

'सुकवि' की उपाधि व्यास जी को भारतेन्दु से प्राप्त हुई थी। वे कविताओं में इसका प्रयोग भी करते थे। 'सतसई' के 700 दोहों में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है। इसका प्रकाशन सन् 1887 में हुआ। 'सतसई' सात विभागों में विभक्त है, जिनमें श्रीकृष्ण की जन्म-लीला, नन्द-महोत्सव, पूतना-वध, ऊरवल-बन्धन-लीला, कालिय-लीला, गोवर्धन-लीला और अन्त में छवि का निरूपण है। कृष्ण की बाल-लीलाओं से पुलकित गोपियों का यह चित्र अवलोकनीय है –

चन्द्रवंशभूषन लखन, कृष्णचन्द्र जनु आज।
ब्रज में आई चाँदनी, दूध धार के ब्याज।।
मोहित गोपिन को अधिक पुलक पसीज्यो देह।
मनहूँ इनके चुवत है रोम-रोम ते नेह।।

पुष्प-वर्षा

ब्रजभाषा में निबद्ध इस लघुकाव्य में एक कनकाचलवासी गन्धर्व की उत्तरी ध्रुव से लेकर मद्रास तक की विमान-यात्रा के माध्यम से रानी विक्टोरिया के जीवनवृत्त के साथ ही ब्रिटिशराज्य के विस्तार का भी विवरण है। पृथ्वी के प्राकृतिक सौन्दर्य का इसमें सुंदर चित्रण है।

ईश्वरेच्छा

तत्कालीन मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वर सिंह, जो व्यास जी के परम हितैषी भी थे, की मृत्यु के समाचार से विह्वल होकर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की। यह एक प्रकार से विलापपरक (एलिजी) काव्य है, जिसमें अन्ततः नियतिवादी स्वर में कवि मृत्यु को ईश्वर की इच्छा मानकर स्वीकार कर लेता है :–

चलत सबै संसार एक ईसुर इच्छा तें।
ईसुर इच्छा लखी परत वेदन रिच्छा तें।।

बिहारी-विहार

यह व्यास जी की बहुचर्चित कृति है। इसमें हिन्दी के महाकवि बिहारी की 'बिहारी-सतसई' के दोहों की पद्यपद्ध व्याख्या की गई है। बिहारी के प्रत्येक दोहे पर व्यास जी ने कुण्डलियों का निर्माण किया है। इसका प्रकाशन संवत् 1955 वि० में हुआ। ग्रन्थ के आरम्भ में कविवर बिहारी के जीवन-वृत्त और साहित्यिक उपलब्धियों पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है। दोहों की संख्या और क्रम पर भी लम्बी विवेचना है।

बिहारी के दोहों की तरह व्यास जी की कुण्डलियों में भी गम्भीर माधुर्य है। आँखों की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए यह बिहारी का सुप्रसिद्ध दोहा है –

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहिं।
देखे बनै न देखते, अनदेखे अकुलाहिं।।

इस पर व्यास जी की कुण्डलिया है –

अनदेखे अकुलाहिं, हाय आँसू बरसावत,
नेह भरेहू रूखे है अति जिय तरसावत।
'सुकवि' लखतहू पलक कलप सत सरिस सुहाइ न।
प्रान जाइ जो तोउ, दोउ दृग को दुख जाइ न।

किसी-किसी दोहे पर एक से अधिक कुण्डलियाँ भी लिखी गई हैं।

धर्म की धूम

होली के अवसर पर गाने योग्य 25 गीतों का यह संग्रह है। गीतों में धर्म-प्रचार की भावना भी सम्मिलित है।

पावस पचासा

वर्षा ऋतु के सम्बन्ध में, ब्रजभाषा में रचित पचास कवित्तों का यह संकलन है।

हो हो होरी

कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन करते हुए व्यास जी ने होली पर गाने के लिए इस संग्रह के गीतों की रचना की थी। गीत सरस होने के साथ ही सुरुचिपूर्ण भी हैं। इन्हें युवक, बालक और वृद्ध सभी गा सकते हैं।

झूलन-झमंक

झूले से सम्बद्ध 25 गीत इस संकलन में हैं। संगीत के शास्त्रीय पक्ष का भी गीत-रचना में ध्यान रखा गया है। गीतों के आलम्बन सीताराम और राधाकृष्ण हैं।

आश्चर्य वृत्तान्त

विस्मयावह घटनाओं से आपूर्ण यह एक रोचक उपन्यास है, जिसमें कथानक की प्रस्तुति स्वप्न के रूप में है। जयपुर-निवासी एक सज्जन किन्हीं बंगाली बाबू के साथ गया के निकट गड्ढे में गिर गये, जहाँ उन्हें एक भूगर्भवेत्ता अंग्रेज़ मिल गया। उसके साथ आश्चर्यपूर्ण स्थानों का भ्रमण करते हुए चित्रकूट के पास विराधकुण्ड से निकले। इस अन्तराल में, भूमि के गर्भ में उन्होंने जरासन्ध का बन्दीगृह, चाणक्य का शस्त्रगृह, निर्मल जल के निर्झर, वहुविध फलों के वृक्ष, गंगा का जल-प्रवाह, व्यासाश्रम, विद्याधारी, नरक, नारायण एवं शिव की प्रतिमाएँ, असि नदी, भर्तृहरि की समाधि, यादवों का कोष, त्रिवेणी-संगम (प्रयाग), प्रभृति स्थान देखे। उपन्यास में योग के चमत्कार, स्वर्ग-नरक के विचित्र दृश्य, अंग्रेज़ के हृदय में राम-भक्ति, शिवाजी और राजपूत तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना सभी कुछ प्रदर्शित है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण हुआ है। उपन्यास की भाषा खड़ी बोली है, जो अपनी विकासावस्था की द्योतक है। शैली **शिवराजविजय** से सादृश्य रखती है।

स्वर्ग-सभा

इस उपन्यास की प्रस्तुति एक पौराणिक आख्यान के रूप में है। इन्द्रादि देवताओं और सरस्वती प्रभृति देवियों ने स्वर्ग में, ब्रह्मा जी को सभापति बनाकर एक सभा की। इसमें वे व्यंग्यात्मक शैली में अपना-अपना दुःख प्रकट करते हैं। सरस्वती संस्कृत के ह्रास से खिन्न हैं और काली मन्दिरों में पशु-बलि से। इसी प्रकार के कष्ट अन्य देवी-देवताओं को भी हैं। इसकी भाषा में व्यंग्य का गहरा पुट है। सामन्तवादी आचरण का यह यथार्थ विवरण द्रष्टव्य है –

> "आजकल चारों ओर यही देख पड़ता है कि राज तो छिछोरों के लिए, तलवार बकरा के लिए, बन्दूक चिड़िया के लिए, नम्रता और प्रेम वेश्याओं के लिए, क्रोध पण्डितों के लिए, उदारता धूर्त्तों के लिए, कम खर्च देव-मन्दिर के लिए, नित्य नियम मद्य के लिए और परहेज शास्त्र के लिए ।"

धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थ

मूर्त्ति-पूजा तथा **अवतार-मीमांसा** अपने नामों के अनुरूप विषयों के प्रतिपादनार्थ रचित कृतियाँ हैं। 'सांख्यतरंगिणी' ईश्वरकृष्ण-कृत **सांख्य कारिका** की भाषा-टीका है। इसी प्रकार की भाषा-टीका व्यास जी ने **तर्कसंग्रह**, जो न्याय-वैशेषिक का बालोपयोगी ग्रन्थ है, पर लिखी थी।

क्रीड़ा सम्बन्धी ग्रन्थ

व्यास जी शतरंज के दक्ष खिलाड़ी थे। **चतुरंग-चातुरी** में इस खेल का प्राचीन इतिहास देते हुए शतरंज खेलने की विभिन्न विधियों का उन्होंने विशद निरूपण किया है। **तासकौतुक पचीसी** में ताश के 25 खेलों का विवरण है।

अन्य ग्रन्थ

गद्यकाव्यमीमांसा में गद्यकाव्य के स्वरूप और प्रभेदों का निरूपण है।

विभक्तिविलास में यह विवेचना की गई है कि विभक्तियों को शब्दों से सम्बद्ध कर लिखना चाहिए या पृथक् से। व्यास जी का मत है कि अव्यय होने के कारण विभक्तियों का उल्लेख शब्दों से पृथक् ही करना समीचीन है।

साहित्यनवनीत सम्पादित पुस्तक है, जो बिहार के स्कूलों के पाठ्यक्रम में नियत थी। इसमें हिन्दी के श्रेष्ठ लेखकों की रचनाएँ संकलित हैं।

संस्कृत संजीवन संस्कृत की उन्नति के लिए प्रदत्त व्यास जी के भाषणों का संग्रह है।

'निजवृत्तान्त' के रूप में व्यास जी ने **बिहारी-विहार** के अन्त में अपना जीवन-परिचय लिखा था।

क्षेत्रकौशल रेखागणित की पुस्तक है।

कथाकुसुमकलिका संस्कृत में लिखित छोटी-छोटी कहानियों की पुस्तक **कथाकुसुम** का हिन्दी अनुवाद है।

भाषा ऋजुपाठ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बालोपयोगी कहानियों का संकलन है। व्यास जी ने इसको हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित कराया था।

अबोध निवारण में आर्यसमाज के विचारों से असहमति प्रकट की गई है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि व्यास जी की रुचियाँ विविध क्षेत्रों में थीं। साथ ही उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इसके बल पर उन्होंने भारती के भण्डार की सर्वाङ्गीण वृद्धि की है।

ग्रन्थ-सूची

पं. अम्बिकादत्त व्यास जी की रचनाएँ – (संस्कृत)

1. अवतार मीमांसा कारिका : हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी, प्रथम संस्करण, सं. 1956 वि.
2. कथाकुसुमम् : व्यास प्रेस, भागलपुर, तृतीय संस्करण, सन् 1894 ई.
3. गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् : व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी
4. दुःखद्रुमकुठार : हरि. यन्त्रा., काशी, सं. 1956 वि.
5. पातंजलप्रतिविम्ब : भागलपुर, सं. 1948 वि.
6. प्राकृतविचित्रशब्दार्थकोश : ('सामवतम्' के खड्गविलास प्रेस, पटना के संस्करण में) सन् 1888 ई.
7. वालव्याकरण : चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस (तृतीय संस्करण, 1894 ई.)
8. शिवराजविजय : व्यास पुस्तकालय काशी, 1969 ई., दशम संस्करण।
9. संस्कृत-अभ्यास-पुस्तकम् : भागलपुर, द्वितीय संस्करण 1892 ई.
10. सहस्रनामरामायणम् : भागलपुर, सं. 1950 वि.
11. सांख्यसागरसुधा : भागलपुर, सं. 1952 वि.
12. सामवतम् : काशी, द्वितीय संस्करण, 1947 ई.

हिन्दी

13. अबोधनिवारण : व्यास पुस्त. काशी, चतुर्थावृत्ति, 1918 ई.
14. अवतारमीमांसा : हरि यन्त्रा., काशी, सं. 1957 ई.
15. आश्चर्यवृत्तान्त : व्यास पुस्त., काशी, 1949 ई.
16. ईश्वरेच्छा : चन्द्र. यन्त्रा., बनारस, 1898 ई.
17. कथाकुसुमकलिका : भागलपुर, सं. 1945 वि.
18. कलियुग और घी : नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर, 1887 ई.
19. क्षेत्रकौशल : बनारस, 1884 ई.
20. गद्यकाव्यमीमांसा भाषा : काशी, 1915 ई.
21. गोसंकट नाटक : खड्गविलास प्रेस, पटना, सं. 1941 ई.
22. चतुरंग-चातुरी : बनारस, 1884 ई.
23. झूलन-झमंक : व्यास पुस्त०, काशी, 1918 ई.
24. तर्कभाषा टीका : काशी, सं. 1941 ई.

25. तासकौतुक पचीसी : काशी, सं. 1937 ई.
26. धर्म की धूम : काशी, 1918 ई.
27. निजवृत्तान्त : पटना, 1901 ई.
28. पावस-पचासा : भागलपुर, सं. 1942 वि. द्वितीय संस्करण
29. पुष्पवर्षा : भागलपुर, सं. 1950, द्वितीय संस्करण
30. बिहारी-विहार : भारतजीवन यन्त्रा., काशी, सं. 1955, प्रथम संस्करण
31. भारत सौभाग्य : पटना, सं. 1944 वि.
32. भाषा ऋजुपाठ : हरि. यन्त्रा., काशी
33. मूर्त्ति-पूजा : लहरी प्रेस, काशी, 1908 ई.
34. मन की उमंग : मुजफ्फरपुर, 1887 ई.
35. महातासकौतुकपचासा : चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी, सं. 1939 वि.
36. विभक्तिविलास : भागलपुर, 1890 ई.
37. ललिता नाटिका : हरि. यन्त्रा., काशी, सं. 1940 वि.
38. संस्कृत-संजीवन : चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी, सं. 1945 वि.
39. सांख्यतरंगिणी : पटना, 1891 ई.
40. साहित्य नवनीत : पटना, सं० 1956 वि.
41. सुकवि सतसई : मुजफ्फरपुर, 1887 ई.
42. स्वर्गसभा : व्या. पुस्त., काशी, 1918 ई. द्वितीय संस्करण
43. हो हो होरी : भागलपुर, 1891 ई.

अन्य ग्रन्थ (संस्कृत)

1. अग्निपुराण : चौखम्बा, वाराणसी
2. अमरकोश : चौखम्बा, वाराणसी
3. काव्यादर्श : वाराणसी
4. साहित्यदर्पण : मेहरचन्द लक्ष्मनदास, नई दिल्ली, 1982

परिशिष्ट – III

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. काव्य के रूप : गुलाबराय
2. छत्रपति शिवाजी (तीन भागों में) : प्र. ग. सहस्रबुधे, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ
3. पं. अम्बिकादत्त व्यास – एक अध्ययन : डॉ. कृष्णकुमार, 1972 ई.
4. वाणभट्ट का आदान-प्रदान : अमरनाथ पाण्डेय
5. भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचा. पुस्तक, वाराणसी, 1956 ई.
6. महाराष्ट्र जीवन प्रभात (हिन्दी अनुवाद) : रमेशचन्द्र दत्त, इण्डियन प्रेस, प्रयाग 1956 ई.
7. शिवाजी के सहयोगी (तीन भागों में) : प्र. ग. सहस्रबुधे, लखनऊ
8. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

English Works

1. *An Introduction to the Study of Literature* : W.H. Hudson.
2. *Shivaji and His Times : J.N. Sirkar.*

पं. अम्बिकादत्त व्यास (1858-1990) की गप
समर्थ कवि, कुशल नाटककार, सम्पादक एवं पत्रव
धर्मप्रचारक और संस्कृत और हिन्दी भाषाओं के प्र
रूप में की जाती है। वे मूलतः समाज-सुधारक थे
सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों और
लिए प्रयत्नशील रहे।

प्रभावी और मंत्रमुग्ध प्रवचन के लिए स्वामी विशुद्धानन्द से 'व्यास' और भारतेन्दु जी से 'सुकवि' तथा 'घटिकाशतक' 'भारतरत्न' आदि कई उपाधियाँ पानेवाले पं. अम्बिकादत्त व्यास हिन्दी और संस्कृत भाषा मण्डल के तेजस्वी नक्षत्र थे। संस्कृत में **कथाकुसुम, दुःखद्रुमकुठार, बाल व्याकरण, प्राकृत-विचित्र शब्दार्थकोश, शिवराजविजय** आदि और हिन्दी में **अबोधनिवारण हो! हो! होरी!, निजवृत्तान्त, पावस पचासा, भारतधर्म, कथाकुसुमकलिका** आदि रचनाएँ लिखकर उन्होंने भारती के भण्डार की सर्वांगीण वृद्धि की।

प्रस्तुत विनिबन्ध के लेखक **डॉ. ओम्प्रकाश पाण्डेय,** लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग में रीडर पद पर कार्यरत हैं। इस कृति में उन्होंने बहुविध प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार पं. अम्बिकादत्त व्यास के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ उनकी समन्वयकारी भारतीय मनीषा पर प्रकाश डाला है।

रेखा चित्र : वि. एन. अजी

पन्द्रह रुपये